॥ श्रीहरिः ॥ 181

भक्त-सुधाकर

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

यह संक्षिप्त भक्तचरितमालाका चौदहवाँ पुष्प है। इसमें भक्तोंके ऐसे विलक्षण चरित्र संग्रह किये गये हैं कि जिनको पढ़ते ही भावुक हृदयोंमें भगवद्विश्वास, भगवत्-प्रीति, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, दृढ़ श्रद्धा, परम सुख और शाश्वती शान्तिकी कल्याणकारिणी तरंगें उठने लगती हैं—जो मनुष्यके सारे पाप-तापोंको धोकर उसे मंगलमय भगवान्‌के चरणोंकी प्राप्ति करानेमें बड़ी सहायक होती हैं। आशा है, भारतके नर-नारी इन पवित्र चरित्रोंको पढ़कर जीवनके असली लाभकी प्राप्तिके पथमें अग्रसर होंगे।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

॥ श्रीहरिः ॥

भक्त-सुधाकर

भक्त रामचन्द्र

दक्षिणमें करवीर (वर्तमान कोल्हापुर)-के पास ऊर्णानदीके तटपर एक गाँवमें एक ब्राह्मण-परिवार रहता था। दो स्त्री-पुरुष थे और तीसरा एक छोटा-सा शिशु था। ब्राह्मण-वृत्तिसे गृहस्थका निर्वाह होता था। घरमें तुलसीजीका पेड़ था, भगवान् शालग्रामकी पूजा होती थी। पत्नी आज्ञाकारिणी थी, पति पत्नीकी रुचिका आदर करनेवाले थे। दोनोंमें धार्मिकता थी, अपने-अपने कर्तव्यका ध्यान था और था बहुत ऊँचे हिन्दू-आदर्शका अकृत्रिम प्रेम। भगवान्की दयासे बच्चा भी हो गया था। दम्पति सुखी थे। परंतु दिन बदलते रहते हैं। सुखका प्रकाशमय दिवस सहसा दुःखकी अमा-निशाके रूपमें परिणत हो जाता है। मनुष्य सोचता है जीवन सुखमें ही बीतेगा, ये आनन्दके दिन कभी पूरे होंगे ही नहीं, इस प्रेममदिराका नशा कभी उतरेगा ही नहीं। छके रहेंगे जीवनभर इसीमें। परंतु विधाताके विधानसे बात बिगड़ जाती है। कितनी आशासे, अन्तस्तलके कितने अनुरागसे, हृदयके सुधामय स्नेह-सलिलसे जिस जीवनाधार वृक्षको सींचा जाता है, वही सहसा विच्छिन्न होकर हमारे हृदयके सारे तारोंको छिन्न-भिन्न कर देता है। जन्म-मृत्युका चक्र चौबीसों घंटे चलता ही रहता है और बड़े स्पष्टभावसे वह घोषणा करता है—'जीवन क्षणभंगुर है, सुख अनित्य है और आशा दुःखपरिणामिनी है!' गाँवमें एक बार जोरसे हैजा फैला और देखते-ही-देखते प्राण-प्रतिमा ब्राह्मणी कालके कराल गालमें चली गयी। ब्राह्मण महान् दुःखी हो गये।

मातृहीन शिशुकी भी बुरी अवस्था थी। कुछ दिनों बाद ब्राह्मण भी हैजेके पंजेमें आ गये और दुधमुँहे नन्हें-से ढाई सालके बच्चेको छोड़कर बरबस चल बसे। जी बच्चेमें अटका, परंतु मृत्युकी अनिवार्य शक्तिके सामने कुछ भी वश नहीं चला।

गाँवसे बाहर एक साधु रहते थे। पहुँचे हुए थे। पता नहीं, उनके मनमें कहाँसे प्रेरणा हुई। ममताके उस पार पहुँच गये थे। दया भी मायाकी ही एक त्याज्यवृत्ति थी उनके अनुभवमें। परंतु ब्राह्मण दम्पतिके मरण और अनाथ बालककी दुर्दशाके समाचारने उनके मनमें दयाका संचार कर दिया, भले ही वह बाधितानुवृत्तिसे ही हो। साधुबाबा दौड़े गये और शिशुको अपनी कुटियापर उठा लाये। बड़ी ममतासे हजार माताओंका स्नेह उँड़ेलकर वे उसे पालने लगे! उनका प्रधान काम ही हो गया बच्चेको नहलाना-धुलाना, खिलाना-पिलाना और उसकी देख-रेख करना। भगवान्‌की लीला।

महात्माकी कुटिया एकान्तमें थी। कुटियाके नीचे ही नदी बहती थी। चारों ओर मनोरम वन था। बड़ा सात्त्विक वातावरण था। संसारके काम, क्रोध, लोभ, असत्य और हिंसा वहाँ फटकते भी नहीं थे, देखनेको भी नहीं मिलते थे। कुत्सित क्रिया या दूषित चेष्टा करनेवाला वहाँ कोई आता ही नहीं था। भोग-विलासकी सामग्रियोंके तो स्वप्नमें भी दर्शन नहीं होते थे, खान-पानमें पवित्रता और सादगी थी। सोने, उठने और आहार-विहारके समय और परिमाण निश्चय थे। सबसे बड़ी बात तो यह कि वहाँ दिन-रात भगवदाराधना, भगवच्चर्चा और भगवच्चिन्तन होता था। मन-इन्द्रियोंके सामने ऐसा कोई दृश्य आता ही न था जिससे उनमें विकार पैदा होनेकी सम्भावना हो। काम, क्रोध, असत्य और हिंसादि दोष मनके धर्म नहीं हैं, इन्द्रियोंकी कुचेष्टा

इनका स्वभाव नहीं है। ये तो विकार हैं—आगन्तुक दोष हैं, जो प्रधानतया संग-दोषसे उत्पन्न होते हैं और फिर तदनुकूल चेष्टाओंसे बढ़ते-बढ़ते चित्तमें यहाँतक अपना स्थान बना लेते हैं कि उनका चित्तसे अलगाव दीखता ही नहीं। मालूम होता है कि ये चित्त और इन्द्रियोंके सहज स्वाभाविक धर्म हैं, उनके स्वरूप ही हैं। अस्तु! जन्मसे ही माता-पिताकी सच्चेष्टा, संतकी कुटियाके शुद्ध वातावरण और सत्संगके प्रभावसे बालकके जीवनमें कोई नया दोष तो आया ही नहीं। पूर्वसंस्कारजनित दोष भी दबकर क्षीण हो गये—बहुत-से मर गये! बुरे विचार, बुरी भावना और बुरी क्रियाओंसे मानो वह अपरिचित ही रह गया। महात्मा उसे पढ़ानेके साथ ही परमार्थकी साधनामें भी लगाये रखते थे। पता नहीं—पूर्वजन्मका कोई सम्बन्ध था या विशुद्ध भगवत्प्रेरणा थी। महात्माजी अपनी सारी साधना—सारा ज्ञान उस बालकके निर्मल हृदयमें एक ही साथ उँड़ेल देना चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि सोलह वर्षकी उम्रमें ही बालक एक महान् साधक बन गया। अहिंसा, सत्य, प्रेम, संयम उसके स्वभाव बन गये। भगवान्की भक्तिका स्रोत उसके अंदरसे फूट निकला और सबको पवित्र करने लगा। उसकी वाणी अमोघ हो गयी सत्यके प्रतापसे और उसकी प्रत्येक इच्छा फलवती हो गयी संयम और त्यागकी महिमासे। वह बाहर और भीतरसे सच्चा महात्मा हो गया। उसका चेहरा ब्रह्मतेजसे चमक उठा!

सबका समय निश्चित है। महात्माजीके जीवनकी अवधि भी पूरी हो गयी। वे इस असार संसारको छोड़कर हँसते-हँसते भगवान्के परमधाममें चले गये। बालक निराश्रय तो हो गया, परंतु महात्माजीकी कृपासे उसे कोई शोक नहीं हुआ। भगवान्का विधान उसने शिरोधार्य किया आदरपूर्वक शान्त हृदयसे!

महात्माजी उसे रंगनाथ कहते थे, इससे उसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। वह दिन-रात भजन-ध्यानमें रहता। भगवान्‌की कृपासे जो कुछ मिल जाता, उसीपर निर्वाह करता। उसके जीवनका एक-एक क्षण भगवत्सेवामें लगता था। उसके तप-तेजकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। लोग दर्शनको आने लगे। उसने दिनभरमें एक पहरका समय ऐसा रख लिया, जिसमें लोगोंके साथ भगवच्चर्चा होती। शेष सारा समय एकान्तमें बीतता।

एक बार एक दुःखी मनुष्य रंगनाथजीके पास आया। उसने उन्हें एकान्तमें अपना दुःख सुनाया। दुःख था—धनकी कामनाका। रंगनाथजीको उसके दुःखसे दुःख अवश्य हुआ। परंतु उन्होंने अपने मनमें कहा कि यह भूलसे ही इतना दुःखी हो रहा है। धनमें सुख होता तो जिन लोगोंके पास प्रचुर धन है, उनका जीवन तो सुखमय होना चाहिये था। परंतु वे भी तो दुःखी ही देखे जाते हैं। दुःखका कारण तो है—अज्ञानजनित असंतोष। वह मिट जाय तो मनुष्य प्रारब्धानुसार किसी भी हालतमें रहे, वह सर्वदा सुखी रह सकता है। रंगनाथजीने उसको समझानेकी चेष्टा की। बड़े प्रेमसे उसको सब बातें बतलायीं। परंतु उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा—'एक बार आप अपने मुखसे कह दें तो मेरे खूब धन हो जायगा तो बस मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।' रंगनाथजीने कहा—'भाई! प्रथम तो यह बात है कि मेरे कहनेसे होता ही क्या है, दूसरे जब मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ और अनुभव करता हूँ कि अधिक धनसे तुम्हारा दुःख बढ़ेगा, घटेगा नहीं; तब मैं यदि सचमुच तुम्हारा हित चाहता हूँ तो तुम्हें वह मिले, ऐसी इच्छा क्योंकर कर सकता हूँ! साथ ही एक बात और है, धन मिलना वस्तुतः तुम्हारे प्रारब्धके अधीन है। न मालूम धनके मिलनेमें तुम्हारा कौन-सा प्रबल कर्म बाधक है। मैं तुम्हें कह

दूँ और धन न मिले तो तुम्हारा भगवान्‌तकपर अविश्वास हो सकता है। इसलिये भैया! तुम एक काम करो—सर्वात्मभावसे श्रीभगवान्‌की शरण होकर उनके सामने अपनी सारी परिस्थिति रख दो और उनसे विनय करो कि वे तुम्हारे लिये जो कुछ मंगलजनक समझते हों, वही करें। सचमुच अभी भी वे तुम्हारा-मेरा सबका कल्याण ही कर रहे हैं। परंतु विश्वास नहीं होता, इसीसे दुःख होता है। भैया! भगवान्‌के विधानमें प्रसन्न रहो। वे मंगलमय हैं।' इस प्रकार बहुत समझानेपर जब उसको सन्तोष नहीं हुआ, तब परम तपस्वी रंगनाथजीने उसको एक बार आँख मूँदनेको कहा। उसने आँखें मूँदीं तो क्या देखता है कि उसके जाने-पहचाने हुए बड़े-बड़े धनी लोग, जिनको वह बहुत सुखी समझता था—भीषण नरकाग्निमें जल रहे हैं। उनमेंसे एक कह रहा है—'सत्य है, धनका ही यह भीषण परिणाम है। मैंने धनके मदमें पागल होकर बड़ा अहंकार किया था। मैंने किसीको कुछ नहीं समझा। ज्यों-ज्यों धन बढ़ा त्यों-ही-त्यों मेरा लोभ बढ़ता गया। मैंने छल-बल-कौशलसे दूसरोंका धन हरण किया। लोगोंमें बड़ा धर्मात्मा और सुखी माना जाता था मैं। परंतु उस समय भी मैं जलता ही था और आज तो इस नरकाग्निमें कैसी भीषण यातना भोग रहा हूँ—इसे मैं ही जानता हूँ। दुःखसे छुटकारा चाहनेवाला कोई भी इस भयंकर परिणामपर पहुँचानेवाले धनका लोभ न करे। यदि न्याय और सत्यके द्वारा धन प्राप्त हो तो उसपर अपना अधिकार न मानकर उसे श्रीभगवान्‌की सम्पत्ति समझे और दीन-दुःखी जीवोंकी सेवाके रूपमें प्रसन्नचित्तसे उसका सदुपयोग करता रहे। धनसे पंद्रह दोष मुझमें उत्पन्न हो गये थे—दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, हिंसा, ममता, मोह, लोभ, काम, असत्य, प्रमाद, दुःसंग, द्यूत, विलासिता और इन्द्रियासक्ति।

मैंने धनमदान्ध होकर न जाने क्या-क्या किया था। उस समय उसका यह भीषण परिणाम नहीं सूझता था। परंतु आज मैं उसीका फल—यह नरकानल भोग रहा हूँ। असलमें अपने लिये तो मनुष्यको उतने ही धनसे प्रयोजन है जितनेसे अन्न वस्त्रका काम चल जाय। अधिक धनका लालच तो भोगवासनाके कारण होता है। मैं उस समय इस बातको भूल रहा था। अब तो हे भगवन्! किसी प्रकार यहाँसे छुटकारा मिले तो पीड़ा दूर हो।' दूसरेने कहा—'मैं बहुत धनी था, किसी भी प्रकारसे धन बटोरना ही मेरे जीवनका उद्देश्य बन गया था। मैंने धनको कभी गरीबोंकी सेवामें नहीं लगाया। इससे पहले तो साँप बना और अब इस दुर्गतिको भोग रहा हूँ।' कुछ नारकी जीवोंने और भी कई बातें सुनायीं। फिर नरकयन्त्रणाके मारे सभी फुफकार-फुफकारकर रोने लगे। उनका आर्तनाद सुना नहीं जाता था। बड़ा ही करुण दृश्य था। इसके बाद यकायक वह दृश्य हट गया और उसकी आँखें खुल गयीं। उसने देखा—महात्मा रंगनाथजी बड़ी करुण-दृष्टिसे उसकी ओर देख रहे हैं और मुसकरा रहे हैं। देखे हुए दृश्यका और भक्त रंगनाथजीकी दयादृष्टिका उसपर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ा। आश्रमके सात्त्विक वातावरण और सत्संगका स्वाभाविक असर तो था ही। भगवत्कृपासे उसकी धन-कामना नष्ट हो गयी। उसने कहा—'गुरुदेव! मुझे ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरा मानव-जन्म सहज ही सफल हो जाय। मुझे धन-मान नहीं चाहिये। मैं चाहता हूँ—भगवत्प्रेम, भगवान्‌की अव्यभिचारिणी भक्ति। आप दया कीजिये।' उसका नाम था रामचन्द्र। रामचन्द्रके हृदयका सुन्दर परिवर्तन देखकर रंगनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भगवान्‌की कृपाका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर गद्‌गद हो गये। उन्होंने कहा—'भाई रामचन्द्र! जबतक चित्तमें भोगोंकी कामना

भरी है, तबतक उसका अन्धकार नहीं मिटता और इस अन्धकारके रहते शोक-सन्तापसे कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। भोगवासनाका नाश सच्चे वैराग्यवान् प्रभुप्रेमी संतोंके संगसे ही हो सकता है। असलमें भगवान्‌के प्रति भक्ति होनी चाहिये। भक्ति विषय-वैराग्य बिना हो नहीं सकती। विषयोंमें प्रीति रहते भगवान्‌में प्रीति कैसे हो और जिसमें प्रीति ही नहीं, उसे पानेकी चेष्टा भी क्यों होने लगी? सच्ची बात तो यह है कि भगवान् ही हमारे प्राणाधार हैं, हमारे परम आत्मीय हैं, सुख-दुःखके नित्य साथी हैं, निज जन हैं। वे ही परम प्रियतम हैं। एक बार उन्हें किसी तरह पहचान लिया जाय, जान लिया जाय तो फिर उनकी ओर हृदयका आकर्षण हुए बिना रह नहीं सकता। ऐसे ही हैं वे प्राणप्रियतम, सौन्दर्य, माधुर्य, वात्सल्य और औदार्यके समुद्र! उनकी एक बार पहचान हो जानी चाहिये; फिर तो प्राण अपने-आप ही उनके लिये रो उठेंगे। उनको प्राप्त किये बिना एक क्षण भी चैन नहीं पड़ेगा। कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। सब कुछ छोड़कर—सारे बन्धनोंको तोड़कर चित्तकी सारी वृत्तियाँ एकमुखी होकर उन्हींकी ओर बहने लगेंगी प्रचण्डवेगसे अत्यन्त द्रुतगामिनी होकर! असह्य हो जायगा उनका निमेषमात्रका वियोग। ऐसा होना ही मनुष्य-जीवनकी पूर्ण सफलताका पूर्वरूप है। मनुष्यको अपने जीवनमें इसीके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। इसका उपाय है भगवान्‌का भजन। मैं तुम्हें द्वादशाक्षर-मन्त्र बतलाता हूँ—तुम कामिनी, कांचन और मान-प्रतिष्ठाका मोह छोड़कर नित्यप्रति इस मन्त्रका पवित्र श्रद्धापूर्ण चित्तसे अधिक-से-अधिक जप किया करना। मन्त्र है—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' खबरदार, बड़े-बड़े प्रलोभन आवेंगे तुम्हें डिगानेके लिये, परंतु किसी प्रकार भी लालचमें फँस

न जाना। भगवान् कल्याणमय हैं, तुम्हारी निष्ठा सच्ची होगी तो वे अपने दर्शनसे तुम्हें कृतार्थ करेंगे।'

रामचन्द्र भी अभी अविवाहित थे। उनके पास पिताका छोड़ा हुआ कुछ धन तो था, परंतु उनकी इच्छा थी कि पहले किसी भी साधनसे खूब धनी बनना, तदनन्तर विवाह करके मौज उड़ाना। गृहस्थ-धर्म-पालनकी अपेक्षा इन्द्रिय-भोग और मौज-शौकपर उनकी दृष्टि कहीं अधिक थी। बल्कि यही कहना चाहिये कि वे विलासमय जीवन बितानेके लिये ही धन-संग्रह करना चाहते थे, उन्होंने बहुत-से उपाय किये। कोई कुछ भी बतलाता, वही करने लगते। अन्तमें भक्त रंगनाथजीकी वाक्सिद्धिकी बात सुनकर किसी पूर्व-पुण्यके प्रभावसे वे इनके पास आये थे और इनके अमोघ संगसे उनकी मोहनिद्रा टूट गयी। वे जग गये और घर लौटकर संतके आज्ञानुसार लग गये भगवत्कृपा प्राप्त करनेके लिये द्वादशाक्षर-मन्त्रके जपमें। जितना-जितना जाप बढ़ने लगा, उतना-उतना ही उनका आनन्द बढ़ने लगा। अब तो—जो लक्ष्मी उनसे दूर-दूर रहती थी वही बिना बुलाये ही उनके पास आने लगी—परंतु वे बड़े दृढ़ रहे अपने व्रतपर। वे जितना ही हटते, उतनी ही भोग-सामग्रियाँ आ-आकर उनके सामने लोट पड़तीं, उनके चरणोंपर न्योछावर होतीं। परंतु उन्होंने किसीकी ओर कभी नजर ही नहीं डाली। मनुष्योंने, देवताओंने उन्हें जमीन-मकानके, महल-सहलके, स्त्री-पुत्रके, धन-दौलतके, मान-प्रतिष्ठाके बड़े-बड़े प्रलोभन दिये। सब चीजें मानो प्रत्यक्ष होकर उनकी सेवा करनेको तैयार हो गयीं, परंतु उन्होंने उनको वैसे ही त्याग दिया, जैसे मनुष्य अपने वमनको त्याग देता है।

रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

उनकी आराधना सफल हुई। वे एक दिन पवित्र एकान्त

देशमें सन्ध्या-वन्दनादि करनेके पश्चात् ध्यानस्थ होकर भगवान्‌के परम मन्त्रका जप कर रहे थे कि साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ प्रकट हो गये। रामचन्द्रजी ध्यानसुखमें मग्न थे। आखिर भगवान्‌की प्रेरणासे उनके नेत्र खुले और वे साधुरक्षक भगवान्‌के दिव्य स्वरूपके दर्शन कर निहाल हो गये। निर्निमेष नेत्रोंसे रूप-सुधाका पान करने लगे। किसी तरह भी तृप्ति नहीं होती थी। बहुत देरके बाद उनकी वाणी खुली और वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उन्हें अपनी प्रेम-भक्ति दान की। जीवन सफल हो गया।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

भक्त-परिवार

भक्त लाखाजी जातिके गौड़ ब्राह्मण थे। राजपूतानेके एक छोटे से गाँवमें उनका घर था। लाखाजी विशेष पढ़े तो नहीं थे। परंतु विष्णुसहस्रनाम और गीता उनके कण्ठस्थ थे और भगवान‌में उनका अटूट विश्वास था। खेतीका काम करते थे। इनकी स्त्री खेमाबाई बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। घरका सारा काम तो करती ही, खेतीके काममें पतिकी पूरी सहायता करती थी; और पतिकी सेवा किये बिना तो उसका नित्यका व्रत ही पूरा नहीं होता था। वह नित्य प्रात:काल स्नान करके पतिके दाहिने चरणके अंगूठेको धोकर पीती। लाखाजीको संकोच होता, वे मने भी करते, परंतु खेमाबाईके आग्रहके सामने उनकी कुछ भी न चलती। उनके दो संतानें थीं—एक पुत्र, दूसरी कन्या। पुत्रका नाम था देवा और कन्याका गंगाबाई। पुत्रके विवाहकी तो जल्दी नहीं थी, परंतु धर्मभीरु ब्राह्मणको कन्याके विवाहकी बड़ी चिन्ता थी। चेष्टा करते-करते समीपके ही एक गाँवमें योग्य वर मिल गया। वरके पिता सन्तोषी ब्राह्मण थे। सम्बन्ध हो गया और समयपर लाखाजीने बड़े चावसे अपनी कन्या गंगाबाईका विवाह करके उसे ससुराल भेज दिया। इस समय गंगाबाईकी उम्र बारह वर्षकी थी। देवा उम्रमें बड़ा था, परंतु उसका विवाह कन्याके विवाहके दो साल पीछे किया गया। बहू घरमें आयी। बहूका नाम था लिछमी। वह स्वभावमें साक्षात् लक्ष्मी ही थी। इस प्रकार लाखाजी सब तरहसे सुखी थे। लाखाजीका नियम था—रोज सबेरे गीताजीका एक पूरा पाठ करना और रातको सोनेसे पहले-पहले विष्णुसहस्रनामके पचास पाठ कर लेना। उनके मुखसे पाठ होता रहता और हाथोंसे काम! यह नियम, जब वे दस वर्षके

थे, तभीसे पिताने दिलाया था, जो जीवनभर अखण्ड रूपसे चला। इसी नियमने उनको भगवद्विश्वासरूपी परम निधि प्रदान की।

सदा दिन एक-से नहीं रहते। न मालूम प्रारब्धके किस संयोगसे कैसे दिन बदल जाते हैं। लाखाजीके जामाताको साँप काट गया और विधिके विधानवश पचीस वर्षकी युवावस्थामें वह अपनी बाईस वर्षकी पत्नी और माता-पिताको छोड़कर चल बसा—जब लाखाजीको यह समाचार मिला तब उन्होंने बड़े धीरजके साथ अपनी स्त्री खेमाबाई और पुत्र तथा पुत्र-वधूको अपने पास बुलाकर कहा—'देखो, संसारकी दृष्टिसे हमलोगोंके लिये यह बड़े ही दुःखकी बात हुई है। दुःख इस बातका इतना नहीं है कि जवाँई मर गये। जीवन-मरण सब प्रारब्धाधीन है, इसे कोई टाल नहीं सकता। दुःख तो इस बातका है कि गंगाबाईका जीवन दुःखरूप हो गया। यदि हमलोग अपने व्यवहार-बर्तावसे गंगाबाईका दुःख मिटा सकें तो हमारा सारा दुःख दूर हो जाय। उसके दुःख दूर होनेका उपाय यह है कि उसको हम यहाँ ले आवें और हमलोग स्वयं विषयभोगोंका त्याग करके उसे श्रीभगवान्‌की सेवामें लगानेका प्रयत्न करें। भोगोंकी प्राप्तिसे दुःखोंका नाश नहीं होता, न भोगोंके नाशमें ही वस्तुतः दुःख है। दुःखके कारण तो हमारे मनके मनोरथ हैं। एक भी भोग न रहे, अति आवश्यक चीजोंका भी अभाव हो, परंतु मन यदि अभावका अनुभव न करके सदा संतुष्ट रहे, उसमें मनोरथ न उठें तो कोई भी दुःख नहीं रहेगा। इसी प्रकार भोगोंकी प्रचुर प्राप्ति होनेपर भी जबतक किसी वस्तुके अभावका अनुभव होता है और उसको प्राप्त करनेकी कामना रहती है तबतक दुःख नहीं मिट सकते। यदि हमलोग चेष्टा करके गंगाबाईके मनसे उसके पतिके अनुभवको भुला दे सकें और उसकी सदा भावरूप

परमपति भगवान्‌के चरणोंमें आसक्ति उत्पन्न कर दे सकें तो वह सुखी हो सकती है। यद्यपि यहाँके सारे सम्बन्ध इस शरीरको लेकर ही हैं, तथापि जबतक सम्बन्ध हैं, तबतक हमलोगोंको परस्पर ऐसा बर्ताव करना चाहिये, जिससे हमारे मन भोगोंसे हटकर भगवान्‌में लगें और हमें परम कल्याणरूप श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो। हित करनेवाले सच्चे माता-पिता, पुत्र-भाई, स्त्री-स्वामी वही हैं, जो अपनी संतानको, माता-पिताको, भाई-बहिनोंको, स्वामीको और पत्नीको अनन्त क्लेशरूप जगज्जालसे छुड़ाकर अचिन्त्य आनन्दस्वरूप भगवान्‌के पथपर चढ़ा देते हैं। हमलोगोंको भी यही चाहिये कि हम शोक छोड़कर नित्य शोकरूप संसारसागरसे गंगाबाईको पार लगानेका प्रयत्न करें।'

लाखाजीकी स्त्री, उनके पुत्र देवा तथा पुत्रवधू सभीका लाखाजीके वचनोंपर पूरा विश्वास था। वे सब प्रकारसे उनके अनुगत थे। अतः लाखाजीके इन वचनोंका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने कहा—'आप गंगाबाईको यहाँ ले आइये, हमलोग आपके आज्ञानुसार भोगोंका त्याग करके उसे भगवान्‌के मार्गपर ही लगावेंगे। इससे हमारा, उसका, सभीका परम कल्याण होगा।'

लाखाजी समधीके घर गये और वहाँका दृश्य देखकर चकित रह गये। उन्होंने देखा—गंगाबाई अपने सास-ससुरको संसारकी क्षणभंगुरता और मिथ्या सम्बन्धका रहस्य समझाकर उन्हें सान्त्वना दे रही है और वे उसकी बात मानकर रोना छोड़कर भगवान्‌के नामका कीर्तन कर रहे हैं। अपनी पुत्रीकी यह स्थिति देखकर लाखाजीको दुःखमें सुख हो गया। उन्हें मानो जहरसे अमृत मिल गया। वे समधीसे मिले, उन्हें देखकर शोक-सागर उमड़ा, परंतु गंगाबाईके उपदेशोंकी स्मृति आते ही तुरंत शान्त हो गया। समधीने लाखाजीसे कहा—'लाखाजी! आप धन्य हैं जो

आपके घर ऐसी साध्वी कन्या उत्पन्न हुई। आप जानते हैं—युवा पुत्रकी मृत्युका शोक कितना भयानक होता है, स्त्रीके लिये तो पतिका वियोग सर्वथा असह्य है, परंतु धन्य है आपकी पुत्रीको—जिसने विवेकके द्वारा स्वयं तो पतिवियोगका दुःख सह ही लिया, हमलोगोंको भी ऐसा उपदेश दिया कि हमारा दारुण पुत्र-शोक दूर हो गया! हम समझ गये—जगत्‌के ये सारे सम्बन्ध आरोपित हैं। जैसे किसी खेलमें अलग-अलग स्वाँग धरकर लोग आते हैं और अपना-अपना खेल पूरा करके चले जाते हैं, वैसे ही इस संसाररूपी खेलमें हमलोग आते हैं, सम्बन्ध जोड़ते हैं और खेल पूरा होते ही चले जाते हैं। यहाँ कोई किसीका पुत्र या पिता नहीं है! एकमात्र परमात्मा ही सबके परम पिता हैं। हम सबको उन्हींकी आराधना करनी चाहिये। आप आ गये हैं—अपनी इस साध्वी कन्याको आप अपने घर ले जाइये। हम दोनों स्त्री-पुरुष पुष्करराज जाकर भगवद्भजनमें ही शेष जीवन बिताना चाहते हैं। आपकी पुत्री हमारे साथ जानेका आग्रह करती है; परंतु हमारे मनमें भगवान् ऐसी ही प्रेरणा करते हैं कि वह आपके ही पास रहे। हाँ, इतना हम जरूर चाहते हैं यह अपनी भावनासे हमारा कल्याण करती रहे। आप जाइये, हमलोग आपके बड़े ही कृतज्ञ हैं; क्योंकि आपकी पुत्रीने ही हमारी आँखें खोली हैं और हमें वैराग्य-विवेकका परम धन देकर भगवान्‌की अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान की है।'

लाखाजी समधीके वचन सुनकर अचरजमें डूब गये। उन्हें अपना विवेक-वैराग्य इनके सामने फीका जान पड़ने लगा। वे जामाताकी मृत्युके शोकको भूल गये और अपनी पुत्री तथा समधी-समधिनको जैसी स्थिति प्राप्त कराना चाहते थे, उससे भी कहीं अधिक उनकी ऊँची स्थिति देखकर उन्हें बड़ा आनन्द

हुआ। उन्होंने समधी-समधिनको हर्षके साथ पुष्करराज भेज दिया। उनके निर्वाहके लिये घरमें जो कुछ था, सब बेचकर नगद रुपये उन्हें दे दिये और गंगाबाईको साथ लेकर घरकी ओर प्रस्थान किया।

गंगाबाईको प्रसन्नचित्त देखकर लाखाजीने पूछा—'बेटी! तेरी ऐसी अनोखी हालत देखकर मैं अचरजमें डूब रहा हूँ। मैं तरह-तरहके विचार करता आया था कि तुझे कैसे समझाकर धीरज बँधाऊँगा, परंतु तेरी स्थिति देखकर तो मैं चकित हो गया। बता बेटी! तुझे ऐसा ज्ञान कहाँसे और कैसे प्राप्त हुआ?' गंगाबाईने कहा—'पिताजी! यह सारा आपकी भक्ति तथा भजनका प्रताप है। आप जो रोज पूरी गीता और विष्णुसहस्रनामके पचास पाठ करते हैं, उन्हींके प्रतापसे भगवान्ने मुझको विश्वास प्रदान किया और अपनी कृपाके दर्शन कराये। आपकी कृपासे भैया और मैं—हम दोनोंने विष्णुसहस्रनाम कण्ठस्थ कर लिया था। यहाँ आकर मैं जहाँतक मुझसे बनता, निरन्तर मन-ही-मन विष्णुसहस्रनामके पाठ किया करती। आपके जामाताकी मृत्युके तीन दिन पहले भगवान्ने मुझको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'बेटी! तेरे पतिकी आयु पूरी हो चुकी है, वह मेरा भक्त है। तेरे साथ कोई पूर्वसम्बन्धका संयोग शेष था, इसीसे उसने जन्म लिया था। अब इसे तीन दिन बाद साँप डँसेगा—उस समय तू इसे मेरा सहस्रनाम और गीता सुनाती रहना। ऐसा करनेसे इसका कल्याण हो जायगा और यह मेरे धामको प्राप्त होगा। मैं तुझे वरदान देता हूँ तुझे शोक नहीं होगा। तुझे सच्चा वैराग्य और ज्ञान प्राप्त होगा। तेरे उपदेशसे तेरे सास-ससुर भी कल्याणपथके पथिक होकर अन्तमें मुझको प्राप्त करेंगे और तू जीवनभर मेरी भक्ति करती हुई अपने पिता-माता तथा भाई-भौजाईके सहित मेरे परम धामको प्राप्त होगी।'

पिताजी! इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मैं जाग पड़ी। मानो उसी समयसे मुझे ज्ञानका परम प्रकाश मिल गया। मैं सारे शोक-मोहसे छूटकर पतिके कल्याणमें लग गयी। मैंने व्रत धारण किया और रातों जागकर पतिदेवताको गीता और सहस्रनाम सुनाती रही। तीसरे दिन पतिदेव स्नान करके तुलसीजीमें जल दे रहे थे। मैं उनके पास खड़ी सहस्रनामका पाठ कर रही थी, वे भी श्रीभगवान्‌का नाम ले रहे थे। इसी समय अचानक एक काले सर्पने आकर उनके पैरको डँस लिया और देखते-ही-देखते ब्रह्माण्ड फटकर उनके प्राणपखेरू उड़ गये। अन्तिम श्वासमें मैंने सुना—उनके मुखसे 'हे नारायण' नाम निकला और उनके कानमें विष्णुसहस्रनामके '**माधवो भक्तवत्सलः**' नामोंने प्रवेश किया। उनकी आँखें खुल गयीं—मैंने देखा, श्रीभगवान् चतुर्भुजरूपमें उनकी आँखोंके सामने विराजित हैं। इतनेमें ही जोरकी ध्वनि हुई और उनका कपाल फट गया। पिताजी! पतिदेवकी इस मृत्युने मेरे मनमें भगवद्विश्वासका समुद्र लहरा दिया, अब मैं तो उसीमें डूब रही हूँ। आप मेरी सहायता कीजिये, जिससे मैं सदा इसीमें डूबी रहूँ। आपलोग मेरा साथ तो देंगे ही।'

लाखाजी पुण्यमयी गंगाकी पुण्यपूर्ण वाणी सुनकर गद्गद हो गये, उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बह चले।

पिता-पुत्री घर आये, माता और भाई-भौजाईसे मिलकर गंगाबाईने उलटी उन्हें सान्त्वना दी। लाखाजी और खेमाबाई तो उसी दिनसे विरक्त-से होकर समस्त दिन-रात भगवद्भजनमें बिताने लगे। घरकी सारी सँभाल गंगाबाई करने लगी। भाई-भौजाई प्रत्येक काम उसकी आज्ञा लेकर करते। वह घरकी मालकिन थी और थी भाई-भौजाईको परमार्थपथमें राह दिखाकर—

विघ्नोंसे बचाकर ले जानेवाली चतुर पथ-प्रदर्शिका। भाई देवाजी और भाभी लिछमी—दोनों गंगाबाईकी आज्ञाके अनुसार पिता-माताकी सेवा करते, गंगाबाईकी सेवा करते और सब समय भगवान्‌का स्मरण करते हुए भगवत्सेवाके भावसे ही घरका सारा काम करते। उन्होंने भोगोंका त्याग कर दिया था और वे पूर्णरूपसे सादा-सीधा संयमपूर्ण जीवन बिताते थे। उनका घर संतोंका पावन आश्रम बन गया था। दैवी सम्पदाके गुण सबमें स्वभावसिद्ध हो गये थे। घरमें दोनों समय भगवान् बालकृष्णकी पूजा होती थी और उन्हें भोग लगाकर सब लोग प्रसाद पाते थे इस प्रकार सबका जीवन पवित्र हो गया। लगभग पचीस वर्ष बाद लाखाजी और खेमाबाईने एक ही दिन श्रीभगवान्‌का नाम जपते हुए भगवान्‌की मूर्तिके सामने ही शरीर त्याग दिये। देवाजीने उनका शास्त्रोक्त रीतिसे अन्त्येष्टि-संस्कार तथा श्राद्ध किया। पुत्र, पुत्रवधू और कन्याने उनके लिये तीन हजार विष्णुसहस्रनामके पाठ किये।

माता-पिताकी मृत्युके बाद बहिन, भाई-भौजाई तीनों भगवान्‌के भजनमें लग गये। भाई-भौजाईके विशेष अनुरोध करनेपर एक दिन गंगाबाईने भगवान्‌से प्रकट होकर दर्शन देनेकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने प्रार्थना सुनी और प्रत्यक्ष प्रकट होकर तीनों भक्तोंको अपने दिव्य रूपके दर्शन कराये। वे तीनों भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये और भगवत्सेवामें ही अपना शेष जीवन लगाकर अन्तमें भगवान्‌के परमधामको चले गये।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

भक्त गोवर्धन

विशालापुरीमें गोवर्धन नामक एक नवयुवक पण्डित रहते थे। ब्राह्मण सदाचारी, विद्वान्, तर्कशील और कुछ विद्याभिमानी थे। उनकी पत्नी भी बड़ी साध्वी थी। उसमें भगवान्‌के प्रति विश्वास और भक्ति थी। पति-पत्नीमें पवित्र प्रेम था। घर बहुत सम्पन्न न होनेपर भी दोनों बड़े सुखी थे। इनके यहाँ एक विरक्त महात्मा कभी-कभी आया करते थे। गोवर्धनजीके पिता महात्माजीके बड़े भक्त थे। उन्होंने इनकी बड़ी सेवा की थी। महात्माकी सच्ची सेवा उनके बतलाये हुए पवित्र मार्गका अनुसरण करनेमें ही है, उनके बाहरी वेष-भूषाका अनुकरण करनेमें नहीं। गोवर्धनके पिता ऐसे ही श्रेष्ठ सेवक थे। उन्हींके सम्बन्धसे महात्मा कभी-कभी इनके घर कृपा करके पधारा करते थे। इधर बहुत दिनोंसे महात्मा नहीं आये। गोवर्धनका पड़ोसी नन्दराम बड़ा असदाचारी और कुमार्गगामी था। वह गोवर्धनको देखकर जलता था और उन्हें भी अपने समान ही बनाना चाहता था; परंतु बीच-बीचमें महात्माका संग प्राप्त होते रहनेसे गोवर्धनकी चित्तवृत्तिपर मलिनताकी छाप नहीं पड़ती थी और इसीलिये पड़ोसी नन्दरामकी दाल नहीं गलती थी।

इधर वर्षोंसे महात्माका संग छूट गया। गोवर्धन सदाचारी विद्वान् तो थे, परंतु भजनपरायण नहीं थे। उनमें तर्क अधिक था, भक्ति नहीं थी; तथापि महात्माके संग-प्रभावसे उनके अंदरके काम-क्रोधादि दोष दबे रहते थे। पर सत्संग छूट जाने और नन्दरामका कुसंग प्राप्त होनेसे उनके वे दबे दोष प्रबलरूपमें उभड़ आये। गोवर्धन धीरे-धीरे शराबी, जुआरी,

व्यभिचारी हो गये। पत्नी बेचारी बड़ी दु:खी थी। उसके मनमें बड़ा संताप था। उसका भगवान्‌में विश्वास था। उसने एक दिन मन-ही-मन आर्तभावसे रोकर भगवान्‌से प्रार्थना की—'भगवन्! मेरे पतिदेव कुसंगमें पड़ गये हैं। महात्मा इधर नहीं आये। आप दीनबन्धु हैं। मुझ दीना अबलापर दया कीजिये। महात्माको यहाँ भिजवाइये और मेरे पतिका जीवन सुधारिये। आप सर्वसमर्थ हैं, कृपासागर हैं, जीव-मात्रके सुहृद् हैं। आपने स्वयं कहा है, मुझको सब जीवोंका सुहृद् मान लेनेपर उसे तुरंत शान्ति मिल जाती है। प्रभो! मैं आपको सर्वसुहृद् मानती हूँ। आप मुझे शान्ति दीजिये।'

भगवान् सच्ची पुकारको तुरंत सुनते हैं। पुरुष हो, स्त्री हो, ब्राह्मण हो, चाण्डाल हो, पण्डित हो, मूर्ख हो—जो कोई भी जब कभी भी आर्त होकर सच्चे हृदयसे उन्हें पुकारता है, वे तुरंत सुनते हैं और उसका मनोरथ सफल करते हैं। यह तो हमारा अभाग्य है कि हम ऐसे सदा-सर्वत्र अपने साथ रहनेवाले सर्वशक्तिमान् परम सुहृद्पर विश्वास न करके नश्वर भोगोंपर और स्वार्थी जगत्‌पर विश्वास करते एवं संकटके समय उनके सामने गिड़गिड़ाकर निराशा और तिरस्कारके विषधर सर्पको हृदयका हार बनाते हैं।

महात्मा समाधिस्थ अवस्थामें सुदूर नदीतटपर एकान्तवास कर रहे थे। अकस्मात् उन्हें अपने सेवकके पुत्र गोवर्धनकी याद आयी। उनका हृदय तिलमिला उठा! 'मैं बहुत दिनोंसे विशालापुरी नहीं गया। पता नहीं, गोवर्धनकी क्या स्थिति होगी। कहीं वह कुसंगका शिकार तो नहीं हो गया। मेरे मनमें बार-बार क्यों उसके लिये इतना उद्वेग हो रहा है?' महात्माके मनसे जगत्‌की सत्ताका सर्वथा अभाव हो गया था।

फिर सत्ताके संकल्प करनेवाले मनका भी अभाव हो गया। पहले दृश्यका अभाव था, अब द्रष्टा भी खो गया। रह गया वही, जो है; वह क्या है, कैसा है? कौन बताये। न कोई जाननेयोग्य है और न जाननेवाला। बस, उसीमें एकात्मता प्राप्त करके महात्मा निर्विकल्प समाधिमें स्थित थे। आज अकस्मात् उनकी समाधि टूटी और उन्हें गोवर्धनकी स्मृति आ गयी। स्मृति भी ऐसी, जो भुलाये नहीं भूलती। मानो किसी आसक्तिवश कुछ हो रहा है। सत्यसंकल्प सर्वनियन्ता भगवान्‌की जो प्रेरणा थी; क्योंकि गोवर्धनकी साध्वी पत्नीने भगवान्‌से यही प्रार्थना की थी कि महात्माको भेजकर मेरे स्वामीका जीवन सुधारिये।

महात्मा सीधे विशालापुरीकी ओर चले, जैसे निपुण लक्ष्यवेधीका बाण सीधा लक्ष्यकी ओर ही जाता है। वे विशालापुरी पहुँचे, उस समय आधी रात बीत चुकी थी। सिद्ध महात्माकी सर्वगत दृष्टिने देख लिया, इस समय गोवर्धन शहरके उत्तरकी ओर बसे हुए मुहल्लेमें मायावती वेश्याके घरपर है। वे सीधे वहीं पहुँचे। बाहरका दरवाजा खुला था। उन्होंने अंदर जाकर कमरेके किंवाड़ खटखटाये और कहा—'गोवर्धन! किंवाड़ खोलो।' गोवर्धन इस समय मद्यकी मादकतामें चूर, अपनेको भूला हुआ था। पराधीन था। सर्वथा बहिर्मुख हो रहा था; परंतु महात्माके सिद्ध शब्दोंकी वह अवहेलना नहीं कर सका। वेश्याका भी साहस नहीं हुआ कि उसे रोके। गोवर्धनने किंवाड़ खोल दिये। चाँदनी रात थी। खोलते ही अपने सामने एक परम तेजःपुंज जटाधारी महापुरुषको खड़े देखा। उनके शरीर और नेत्रोंसे एक स्निग्ध सुशीतल तेजोऽमृतधारा निकल रही थी। गोवर्धनको पहले तो कुछ

डर-सा लगा, बहम हुआ, मनमें कुछ उद्वेग आया; परंतु दूसरे ही क्षण उसने महात्माको पहचान लिया। उसका सारा मद उतर गया। वह चीख मारकर चरणोंमें गिर पड़ा।

संत और भगवान्‌की कृपासे क्या नहीं होता। महान् दुराचारी भी चुटकी मारते-मारते साधु-शिरोमणि बन जाता है। अरे भोले मानव! तू कितने विकट भ्रमके भँवरमें फँस रहा है। संसारके पदार्थोंमें सुख है, यह कैसी मिथ्या मृगतृष्णाका विश्वास है। बार-बार ठोकरें खाता है, निराश होता है, गिरता है, चोट लगती है, फिर भी मोहवश उसी ओर दौड़ता है।

मायावती भी किंवाड़ोंके पास खड़ी थी। महात्माके अमोघ दर्शनका प्रभाव था। उसका भी हृदय द्रवित हुआ जा रहा है। जीवनके सारे पाप मानो इस क्षण मूर्तिमान् होकर उसके सामने खड़े हो गये। वह काँप गयी। हृदयमें पश्चात्तापकी प्रचण्ड आग जल उठी। सारी पापराशि जल गयी। हृदयका भाव-नवनीत पिघला और अश्रुधाराके रूपमें वह नेत्रमार्गसे बह चला। पता नहीं, उसका हृदय शुद्ध हुआ माना जाय या नहीं; पर वह भी आगे बढ़कर महात्माके चरणोंपर गिर पड़ी और नेत्र-जलकी धाराओंसे उनके पावन पद-सरोज पखारने लगी। महात्माका वरद हस्त उठा। महात्मा झुके। वरद हस्तने दोनोंके मस्तकोंका स्पर्श किया और बोले—'मेरे बच्चो! उठो, घबराओ नहीं। भगवान्‌की कृपा-शक्तिके सामने तुम्हारे पापोंकी क्या बिसात है। कितना ही घना, गहरा और बहुत समयका अन्धकार हो, प्रकाशके आते ही वह छिप जाता है। फिर यदि वहाँ साक्षात् सूर्य उदय हो जायँ, तब तो अन्धकारको कहीं छिपनेकी भी जगह नहीं मिलती। भगवान्‌की कृपा

कभी न छिपनेवाला प्रचण्ड और सुशीतल प्रकाशमय सूर्य है। पापान्धकारमें कितनी शक्ति है जो क्षणमात्र भी उसके सामने ठहर सके। मैं श्रीभगवान्‌की अनुपमेय कृपा-शक्तिकी प्रेरणासे ही आधी रातके समय यहाँ आया हूँ। तुम दोनों पवित्र हो गये। उठो! भगवान्‌का भजन करो और जन्म-जीवनको सफल करो।' दोनों उठे और हाथ जोड़कर कठपुतलीकी भाँति सामने खड़े हो गये। दोनोंके नेत्र झरने बने हुए थे।

महात्माने कहा—'गोवर्धन! तुम घर जाओ और अपनी साध्वी पत्नीको सान्त्वना दो। आजसे यह मायावती तुम्हारी बहिन है। इसको अपनी सहोदरा बहिन समझो। यह अब कावेरीके तटपर जाकर भगवान्‌का भजन करेगी। किसी कुसंगमें पड़कर यह इस दशाको पहुँची। तुम्हारे पिता मेरे बड़े आज्ञाकारी थे, संत थे, भगवत्प्राप्त पुरुष थे। उनके शुभ संस्कार तुम्हारे अंदर थे; परंतु तुमने विद्याके अभिमानमें भगवान्‌की भक्ति नहीं की। तर्कके बलपर केवल जगत्‌के अस्तित्वका खण्डन ही करते रहे। तुमने मायाधीश्वर सच्चिदानन्द भगवान्‌को भी मायाका ही कार्य बताया। इसीलिये तुम बिना केवटकी नावके सदृश इस अघ-समुद्रमें डूब गये। जो अतुलशक्ति भगवान्‌का आश्रय न लेकर अपने चार अक्षरोंके अभिमानपर कूदा-फाँदा करते हैं, उन्हें तो उलटे मुँहकी खानी ही पड़ती है। उनका पतन ही होता है। अन्धकारका प्रवेश वहीं होता है, जहाँ प्रकाश नहीं होता। पहलेसे ही भगवदाश्रयकी दिव्य शीतल स्निग्ध ज्योति प्रज्वलित कर ली जाय और दृढ़ विश्वासके निर्मल स्नेहसे सिंचन करते हुए उसे सदा ज्यों-की-त्यों प्रज्वलित रखी जाय तो वहाँ कभी पापान्धकारका

प्रवेश हो ही नहीं सकता। पापके बिना ताप भी नहीं आते। चोर-डाकुओंका प्रवेश अँधेरेमें ही हुआ करता है।

'तुमने तो आज भी भगवान्‌को नहीं पुकारा, उनकी शरण नहीं गये। पर तुम्हारी पत्नी बड़ी भक्तिमती है। उसका भगवान्‌पर अटल विश्वास है। उसीकी विश्वासभरी आर्त पुकारने भगवान्‌का आसन हिलाया और भगवान्‌की प्रेरणाने ही समाधिसे उठाकर मुझको यहाँ भेजा। मैं भगवान्‌की सत्य प्रेरणासे ही यहाँ आया; इसीसे तुम दोनोंके हृदयोंमें जो चिरपोषित अनाचार-दुराचारकी राशि थी, वह सूर्यके प्रखर प्रकाशसे अन्धकारके नाशकी भाँति इतनी जल्दी मिट गयी। भगवान्‌के मिलनेपर पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है। भगवान्‌के मिलनेकी इच्छा ही पापोंको जला डालती है। आज मेरे साथ आयी हुई भगवान्‌की प्रेरणाका अनिच्छित दर्शन करके ही तुम कृतार्थ हो गये हो। यह भगवान्‌की अनन्त कृपाका दिग्दर्शन है। इस कृपा-प्राप्तिमें कारण है तुम्हारी साध्वी पत्नी। तुमने भगवान्‌को नहीं पुकारा। पर तुम्हारी पत्नीने विश्वासभरी पुकार की। उसकी प्रार्थना थी—'दीनबन्धु भगवान् दया करके मेरे द्वारा तुम्हारा सुधार करें।' वही हुआ। मैं तो समाधिस्थ था। यहाँ क्यों आता। साध्वी ब्राह्मणीके द्वारा वशीकृत भगवत्कृपाशक्तिने मुझको जगाकर यहाँ भेजा। सच्चे आत्मीय, स्वजन, बन्धु और प्रिय वे ही हैं, जो अपने आत्मीय, स्वजन, बन्धु और प्रियको कुमार्गसे हटाकर—विषय-विष-वारुणीके जहरीले नशेसे छुड़ाकर भगवान्‌के मार्गपर लगाते हैं और भगवान्‌से कातर प्रार्थना करके उन्हें भगवत्प्रेम-सुधा-धाराका पान कराते हैं। तुम्हारी पत्नी धन्य है और तुम भी धन्य हो, जो ऐसी पत्नीके पति

होनेका सौभाग्य तुमने प्राप्त किया है। सावित्रीने एक यमराजके फंदेसे अपने स्वामी सत्यवान्‌को छुड़ाया था। पर तुम्हारी साध्वी पत्नीने तुमको अनेकों जन्म-जन्मान्तरोंमें जानेसे छुड़ाकर अनेकों—अनन्तों मृत्युओंसे बचा लिया। साध्वी पत्नी क्या नहीं कर सकती।

'यह मायावती पूर्वजन्मकी बड़ी भक्ता थी। यहाँ भी पवित्र ब्राह्मणकुलमें इसका जन्म हुआ था। परंतु माता-पिता तथा स्वामीके परलोकवासी हो जानेपर दुराचारी मनुष्योंने इसे अपने फंदेमें फँसा लिया। यह भोली थी, सरलहृदया थी, इससे सहज ही कुसंगमें पड़ गयी। जिस कुसंगने तुम्हारा पतन किया, उसीने इसका भी किया। कुसंगसे ऐसी कौन-सी बुराई है, जो नहीं हो सकती और ऐसा कौन-सा पतन है, जो नहीं होता। मूर्ख मनुष्य धनादिके लोभसे कुसंगमें पड़कर अपने ही हाथों अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारकर स्वयं ही अपनेको पतनके गहरे गड्ढेमें ढकेल देते हैं। मायावती भी कुसंगमें पड़कर गिर गयी। पर इसके हृदयमें पश्चात्तापकी आग जल रही थी। पापी दो प्रकारके होते हैं। एक वे, जो परिस्थितिवश कुसंगमें पड़कर पापपंकमें धँस जाते हैं; पर वह पाप उनके हृदयमें सदा शूलकी तरह चुभता रहता है। वे पश्चात्तापकी आगमें तपते और मन-ही-मन कराहते हुए पतितपावन भगवान्‌को पुकारा करते हैं। दूसरे वे, जो पाप करनेमें ही दक्षता, चतुराई और जीवनकी सफलता मानकर मन-ही-मन गौरवका अनुभव करते हैं। ऐसे लोग बार-बार भयानक नरक-यन्त्रणाओं और नारकीय योनियोंमें विविध दुःखों एवं कष्टोंके ही शिकार होते हैं। पर जो पहले—पश्चात्ताप करके दीनबन्धु भगवान्‌पर अनन्य विश्वास करके

उन्हें पुकारनेवाले होते हैं, उनकी पुकार भगवान् सुनते हैं और अपनी कृपासुधा-धारामें नहलाकर उन्हें तुरंत परम साधु बना लेते हैं।'* अस्तु,

मायावतीने अभी कल ही रो-रोकर भगवान्‌को पुकारा था। भगवान्‌ने उसकी भी पुकार सुन ली। गोवर्धन और मायावती दोनोंके नेत्रोंसे उसी प्रकार अश्रुधारा बह रही थी। उनके सारे पाप उसीमें बह गये थे। दोनोंने बहिन-भाईकी भाँति परस्पर मिलकर

---

* श्रीगीतामें इन दोनों प्रकारके पापियोंकी स्थिति और गतिका वर्णन किया है—

(१) न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥
(७।१५)

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
(१६।१९-२०)

'मायाके द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले, आसुरी स्वभावके आश्रित, मूढ़, अधम पापीलोग मुझको नहीं भजते। उन द्वेष करनेवाले निर्दय पापी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ लोग मुझको न पाकर (एक ही जन्ममें नहीं) जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, तदनन्तर उससे भी नीच गतिको ही जाते हैं।'

(२) अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(९।३०-३१)

'यदि महापापी मनुष्य भी अनन्यभाक् होकर (मुझ एकमें ही विश्वास करके) मुझको भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये क्योंकि उसका निश्चय यथार्थ है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सनातनी शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तुम यह निश्चय सत्य समझो कि मेरे भक्तका नाश नहीं होता।'

महात्माके आगे हाथ जोड़े। महात्माने मायावतीको अपनी तुलसीकी माला देकर आशीर्वाद दिया तथा कावेरीके तटपर जाकर भजन करनेका आदेश दिया। गोवर्धनको उसके घर जानेका आदेश दिया और प्रातःकाल ही स्वयं भी उसके घर पधारनेकी बात कही। गोवर्धन और मायावतीके सामनेसे मायाका पर्दा हट गया। वे निहाल हो गये। संत और भगवंतकी कृपाशक्ति कल्याण करनेमें अमोघ होती है।

गोवर्धनकी पत्नीकी आँखोंमें नींद नहीं थी। वह रो-रोकर करुणामय भगवान्‌को पुकार रही थी। इतनेमें ही गोवर्धनने आकर किंवाड़ खटखटाये तथा आवाज दी। दीर्घकालसे गोवर्धन बहुत ही कम घर आते और जब कभी आते तो शराबके नशेमें चूर, बड़बड़ाते, खीझते, झल्लाते, चीखते और गिरते-पड़ते! बेचारी ब्राह्मणी सँभालती, नहलाती, खिलाती, सेवा करती, समझाती; परंतु बदलेमें उसे मिलते तिरस्कार, अपमान, वाग्बाण और कभी-कभी मार भी। ब्राह्मणी सब सहती, पतिकी असहाय अवस्थापर विचारकर रो पड़ती और आर्त होकर भगवान्‌को पुकारती। आज तो वे पूर्ण स्वस्थ हैं। उनकी आवाजसे ही उनकी स्वाभाविक स्थितिका पता लगता है। पर आज इस स्वाभाविकताके साथ कुछ अन्यजातीय अस्वाभाविकता भी है—वह है पवित्र हृदयकी प्रभु-भक्तिका निर्मल सुधाप्रवाह। ब्राह्मणी आवाज सुनते ही मानो निहाल हो गयी। उसने दौड़कर दरवाजा खोला। गोवर्धन पत्नीके साथ घरके अंदर आये। वह चरणोंपर गिरकर रोने लगी। इधर कृतज्ञ-हृदय गोवर्धनके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लगी थी। गोवर्धनने उसको उठाया और स्नेहसे अपने पास बैठाकर गद्‌गद कण्ठसे सारी कथा सुनायी। ब्राह्मणी भगवत्कृपाका चमत्कार देखकर कृतार्थ हो गयी और उसका बचा-बचाया

जीवन सदाके लिये प्रभुके समर्पण हो गया। समस्त रात्रि संत-चर्चा और भगवच्चर्चामें बीत गयी। प्रातः स्नानादिसे निवृत्त होकर गोवर्धन भगवत्-पूजाकी बात सोच रहे थे कि महात्मा पधार गये।

पति-पत्नी उनके चरणोंपर गिर पड़े। दोनोंका हृदय कृतज्ञता, उल्लास और सर्वसमर्पणकी निश्चयतासे भरा था। महात्माने दोनोंको भगवद्भक्तिका उपदेश और षोडश नामके—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस कलिसन्तरणोपनिषद्के मन्त्रका उपदेश किया और कहा, 'अब तुम्हारा कभी पतन नहीं होगा। तुम दोनों भगवान्के दिव्य धामको और स्वरूपको प्राप्त करोगे।' तदनन्तर भिक्षा आदि करनेके बाद महात्मा अपने स्थानको पधार गये।

इधर ये दोनों भगवद्भक्तिमें तल्लीन हो गये। ब्राह्मणीका जीवन भक्तिमय था ही। ब्राह्मण भी परम भक्त हुए और अन्तमें भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करके दोनों दिव्य धामको पधारे। वहाँ उन्होंने नित्य पार्षदगति प्राप्त की।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!'

भक्त रामहरि भट्टाचार्य

रामहरि भट्टाचार्य बंगालमें कालनाके निकट हाँसपुकुर ग्राममें रहते थे। यजमानीकी जीविका थी। घरमें साध्वी स्त्री और एक पुत्रके सिवा और कोई नहीं था! रामहरिका हृदय भगवद्-विश्वाससे भरा था। उनका सबके साथ प्रेमका सम्बन्ध था। संसारमें उनका कोई शत्रु नहीं था। थोड़ी-सी जमीन और यजमानोंकी स्वेच्छापूर्वक दी हुई भेंटकी आमदनीसे उनका परिवार अच्छी तरह पल जाता था। वे प्रतिवर्ष भादोंमें घरसे निकलते और यजमानोंके यहाँ कई गाँवोंमें घूम-फिरकर जो कुछ मिलता, लेकर आश्विन लगते-लगते ही घर लौट आते। बड़े सन्तोषी और शान्त वृत्तिके ब्राह्मण थे रामहरि महाराज।

वे सदाकी भाँति इस वर्ष भी भादों लगते ही घरसे निकल पड़े। इस साल बरसात देरसे शुरू हुई थी, इसलिये इन दिनों आकाश लगातार काली घटाओंसे घिरा रहता और रोज ही वृष्टि होती। रामहरि महाराजने इन दुर्दिनोंकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वे भगवान्‌का नाम लेकर सदाकी भाँति एक गाँवसे दूसरे गाँवोंमें जाने-आने लगे।

बर्दवानसे कालनातक पक्की सड़क है। एक दिन सन्ध्यासे कुछ ही पूर्व रामहरि महाराज उसी सड़कपर द्रुत गतिसे बढ़े चले जा रहे थे। गाँव अभी चार कोस था। आँधी-पानीसे भरी भयावनी रातके डरसे बचनेके लिये वे दौड़-से रहे थे। सन्ध्या होते-होते ही आकाशकी अवस्था बड़ी भयानक हो गयी। बिजली बड़े जोरोंसे कड़कने लगी, बादल गरजने लगे। आँधीके प्रबल वेगसे बड़ा डरावना शब्द होने लगा और साथ ही मूसलधार वर्षा होने लगी। रामहरिजी शरीरका

पूरा बल लगाकर तेजीसे चलने लगे। चिन्ता और डरसे उनका शरीर काँप रहा था।

रात पड़ गयी, परंतु तूफानके शान्त होनेका नाम नहीं। झड़की गति और भी बढ़ गयी। इधर-उधर सियार डरावना शब्द कर रहे थे। आँधीके झटकेसे बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियाँ टूट-टूटकर गिर रही थीं और उनपर बैठे हुए पक्षी आर्तस्वरसे चिल्ला रहे थे। इससे रात्रि और भी भयंकर हो गयी। रामहरि किसी ओर न देखकर विपत्तिहारी भगवान्का नामस्मरण करते हुए जोरसे बढ़े चले जा रहे थे। रातभर कहीं आश्रय मिल जाय, उनको इस बातकी चिन्ता थी। इसी बीच पास ही बड़े जोरसे कड़ककर बिजली गिरी। रामहरिजी काँप गये। आकाशको चीरती हुई विद्युत्-शिखा उनकी दोनों आँखोंको मानो वेधकर आकाशमें विलीन हो गयी। रामहरिजी एक पेड़के नीचे खड़े हो गये। उनके मुखसे विपद्विदारी भगवान्का नाम अनवरत निकल रहा था। पर दूसरे ही क्षण उन्हें ध्यान आया कि ऐसे आँधी-तूफानमें वृक्षके नीचे खड़े रहना तो निरापद नहीं है; पता नहीं, कब डाल टूट पड़े। वे आश्रय पानेकी आशासे व्याकुलताके साथ इधर-उधर नजर दौड़ाने लगे।

इतनेमें ही अकस्मात् जंगलमें उन्हें मनुष्यका कण्ठस्वर सुनायी दिया। रास्तेके बगलमें ही बीहड़ जंगल था। अब तो लालटेनकी रोशनी भी दिखायी दी। रामहरिजीने देखा; दो मनुष्य धीरे-धीरे उन्हींकी ओर आ रहे हैं। मनुष्योंको देखकर उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली। उन्होंने बड़े जोरसे चिल्लाकर उनको पुकारा और अपने पास आनेके लिये प्रार्थना की। उनकी पुकार सुनते हुए वे दोनों जल्दी-जल्दी चलकर उनके पास आ पहुँचे। वे साधारण ग्रामीण-से लगते थे, शरीर मजबूत और बलवान् थे। उनके एक

हाथमें लालटेन और छाता तथा दूसरेमें लंबी लाठी थी। रामहरिजी उन्हें देखकर मन-ही-मन कुछ डरे। रुपये पास होनेपर डर लगता ही है। चील मांसको देखकर ही पीछे लगती है। इसी प्रकार चोर-डकैत भी रुपयोंके ही पीछे लगा करते हैं। कुछ भी हो, दूसरा कोई उपाय नहीं था। रामहरिजीने कहा—'भाइयो! मैं गोविन्दपुर जाऊँगा; पर दिन बहुत खराब हो गया, इसलिये रात-ही-रात वहाँ पहुँचना कठिन है। आपलोग दया करके मुझे पासके किसी गाँवमें पहुँचा दें तो बड़ी कृपा हो।' रामहरिजीकी बात सुनकर उनमेंसे एकने विनयके साथ कहा—'पण्डितजी! हमारा घर यहाँसे बहुत नजदीक है। आप यदि रातभर हमारे घर विश्राम करें तो आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। हम भी अपना अहोभाग्य समझेंगे। प्रातःकाल आपको जहाँ जाना हो, चले जाइयेगा।' उनके विनीत वचनोंसे रामहरिजीका भय दूर हो गया और वे उनके पीछे-पीछे चलकर एक टूटी इमारतके सामने आकर खड़े हो गये। उनमेंसे एकने जोरसे पुकारा—'अरे धन्ना!' जब द्वार नहीं खुला, तब वे दोनों जोर-जोरसे 'धन्ना!, ओ धन्ना!' पुकारने लगे। कुछ देरके बाद दरवाजा खुला और एक भीषण आकृतिका नवयुवक बाहर निकल आया।

युवकको देखकर एकने कहा—'धन्ना! आजकी यात्रा सफल हुई—अतिथि-सत्कारका अवसर मिल गया।' धन्नाने तीक्ष्ण दृष्टिसे रामहरिजीकी ओर देखकर कहा—'तब भोजनकी व्यवस्था करूँ?' रामहरिजी उनका रंग-ढंग देखकर समझ गये कि जरूर दालमें काला है। उनका हृदय धड़कने लगा और वे मन-ही-मन आर्तभावसे संकटहारी श्यामसुन्दरका स्मरण करने लगे। परंतु बाहरसे इस भावको छिपाकर उन्होंने इतना ही कहा—'मैं आज कुछ भी नहीं खाऊँगा; और वर्षा थम गयी तो रातको ही चला

भी जाऊँगा।' धन्नाने उनकी बात सुनकर कुछ नहीं कहा और उन्हें खींचकर अंदर ले गया। वे दोनों मनुष्य भी पीछे-पीछे अंदर चले गये।

रामहरिजीने देखा, चारों ओर जंगल-सा है, बगलमें ही एक घर है। धन्ना रामहरिजीको घरके बीचकी एक कोठरीमें ले गया और उन्हें तख्तेपर विश्राम करनेके लिये कहकर वहाँसे चल दिया। रामहरिजी तख्तेपर बैठे थर-थर काँप रहे थे। हाय! किस अशुभ मुहूर्तमें घरसे निकला और जंगलमें इनसे सहायता ही क्यों चाही। आज इन डकैतोंके हाथ प्राण नहीं बचेंगे!

बगलकी कोठरीसे बातचीतकी आवाज सुनायी दी। बीचमें एक पतली-सी दीवाल थी, इससे प्रायः सभी बातें उन्हें सुनायी पड़ रही थीं। उन्होंने कण्ठस्वरसे पहचान लिया कि बातचीत करनेवालोंमें दो व्यक्ति वही हैं, जो जंगलमें मिले थे और तीसरा धन्ना है। बातचीतके सिलसिलेमें पता लगा कि उन दोनोंके नाम हाराण और तीनकौड़ी हैं तथा धन्ना हाराणका लड़का है। हाराणने कहा—'देखो तीनकौड़ी! मालूम होता है ब्राह्मण है, गलेमें जनेऊ है। फिर ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।' तीनकौड़ी बोला—'चलो, तुम भी बड़े डरपोक हो। अरे, गाड़ेमें सूपका क्या भार। अबतक ऐसे कितने ब्राह्मणोंका पाप लगा होगा। एक और सही। इसके पास पैसे तो काफी मालूम होते हैं।' धन्ना बीचमें ही बोल उठा—'तुमलोगोंको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। एक ही चोटमें काम तमाम! बस, जरा उसे नींद तो आ जाय।' हाराणने कहा—'चुप रह! इतना चिल्लाता क्यों है, सुन लेगा तो कहीं सरक निकलेगा।' धन्नाने कहा, 'भागेगा कहाँ? इन हाथोंमें पड़कर भाग निकलना बड़ा आसान है न!' बातचीत सुनकर रामहरिजीके तो प्राण सूख गये। मनमें आया भाग निकलूँ; पर

धन्नाके शब्द याद आ गये। सोचा, वह सब ओर देखता होगा। फिर, इस अनजान जंगलमें भागकर भी कहाँ जाऊँगा। ये दुष्ट तुरंत ही ढूँढ़कर मार डालेंगे।

बाहर अब भी मूसलधार वृष्टि हो रही थी। झड़की तेजी तो कुछ घटी थी, परंतु अभी और सब बातें वैसी ही थीं। घरके बीचसे अन्धकारमय आकाशका कुछ भाग दीख पड़ता था। क्षण-क्षणमें बिजली कौंधती थी और साथ ही दूरसे वज्रपातकी भीषण ध्वनि सुनायी पड़ती थी—मानो रामहरिजीके लिये मृत्युका समाचार लेकर आ रही हो। पास ही एक कदम्बका वृक्ष था। उसकी पुष्पित शाखाओंसे स्निग्ध सुगन्ध लेकर बीच-बीचमें ठंडे पवनका झोंका आ जाता था। रामहरिजीको अपने श्यामसुन्दरके मन्दिरके बगलका कदम्बवृक्ष याद आ गया। अहा! उसमें भी हजारों फूल खिले होंगे और वर्षासिक्त वायु उनकी स्निग्ध गन्धको भी इसी प्रकार सब ओर बिखेर रहा होगा। मेरी धर्मपत्नी बच्चेको हृदयसे लगाकर निद्रामें मेरे लौटनेका स्वप्न देख रही होगी और मेरे प्राणधन श्यामसुन्दर! मेरी बड़ी साधनाके, महती आकांक्षाके स्वामी श्यामसुन्दर! हाय! आज यदि मैं इस सुनसान जंगलमें डाकुओंके हाथों मारा गया तो मेरे श्यामसुन्दर! फिर तुम्हारी पूजा कौन करेगा? मैं जिन ब्राह्मणको पूजाका भार दे आया था, मेरी अनुपस्थितिमें पता नहीं, वे सुचारुरूपसे तुम्हारी पूजा कर रहे हैं या नहीं। हा! श्यामसुन्दर! तुम तो पाषाणकी मूर्तिमात्र नहीं हो, तुम्हारे उस नीलकमल-से साँवरे शरीरमें अनन्त करुणामयी दिव्य चिच्छक्ति नित्य विराजमान है और निरन्तर आर्त प्राणियोंका कल्याण कर रही है। बोलो, बोलो, मेरे श्यामसुन्दर! तुम्हारे इस शरणागत दीन ब्राह्मणका यह नश्वर शरीर इस अज्ञात अरण्यमें क्या सियार-कुत्तोंके खानेके

काममें आयेगा? रामहरिजीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। वे उन्मत्तकी भाँति 'श्यामसुन्दर! श्यामसुन्दर!' कहकर करुण क्रन्दन करने लगे।

ब्राह्मण रामहरि जिस समय 'श्यामसुन्दर! श्यामसुन्दर!' कहकर आर्तभावसे रो रहे थे, ठीक उसी समय धन्ना दूसरी कोठरीमें कुछ दूरपर बैठा खाँडेपर धार चढ़ा रहा था। तीनकौड़ी और हाराण बातचीतमें लगे थे। उन्होंने सोचा बगलकी कोठरीमें ब्राह्मण तख्तेपर विश्राम करता या सोता होगा। उनकी नजर ब्राह्मणपर लगी थी, पर थकावटके कारण इन्हें बीच-बीचमें जँभाइयाँ आ रही थीं। आखिर उन लोगोंने यही निश्चय किया कि धन्नाके हाथसे यह काम नहीं कराना है। हाराणने कहा, 'तब मैं ही काम निपटाऊँगा। देखूँ ब्राह्मण सो गया या नहीं। कोई आवाज तो नहीं सुनायी देती।'

यह कहकर हाराणने जाकर देखा। रामहरिजी उस समय प्राणभयसे व्याकुल हुए चादर ओढ़े दुबके पड़े थे। मन-ही-मन श्यामसुन्दरकी करुण प्रार्थना चल रही थी। हाराणने देखकर धीरेसे कहा—'तीनकौड़ी! नींद तो आ गयी है, फिर देर क्यों करें।' तीनकौड़ी बोला—'शायद जागता हो, कुछ और ठहर जाओ।'

रामहरिजी तो सुन-सुनकर सूखे जा रहे थे। सोच रहे थे, अब मृत्युसे बचनेका कोई उपाय नहीं है। प्रभु! यह क्या हो गया।

अकस्मात् ब्राह्मणमें मानो असीम बल आ गया। कदम्बका वृक्ष घरमें चूल्हेके पास ही था। बरसातके कारण उसमें पत्ते खूब आ गये थे। पेड़ बहुत घना और विशाल था। पत्तोंकी आड़में छिपनेको बहुत जगह थी। रामहरिजी चादर छोड़कर धीरे-धीरे उठे और तुरंत पेड़पर चढ़कर छिप गये।

इधर ताड़ी (शराब) पीते-पीते नशेमें ही हाराणने कहा, 'धन्ना! आज तुझे खाँडा नहीं चलाना पड़ेगा। यह ब्रह्मयज्ञ मैं ही करूँगा। मालूम होता है अब गहरी नींदमें है।' मन-ही-मन झल्लानेपर भी धन्ना कुछ बोला नहीं। हाराणने धन्नाके हाथसे खाँडा लेकर धार देखी। फिर तीनों मिलकर ताड़ी-पर-ताड़ी पीने लगे। नशा बढ़ने लगा। धन्ना कुछ ज्यादा पी गया। उसे नींद आने लगी। झूमता हुआ वह बाहर निकला और जिस तख्तेपर रामहरिजी सोये थे, जाकर उन्हींकी चादर ओढ़कर वहीं पड़ गया। नशेमें उसे अपनी करनीका कुछ भी पता नहीं था वह बेहोश था। तीनकौड़ी और हाराणने हरी मिर्च और सत्तूकी चाट मुँहमें लेकर फिर ताड़ी चढ़ानी शुरू की। अब पूरा नशा हो गया!

झूमता हुआ हाराण धार दिये हुए खाँडेको लेकर बगलकी कोठरीमें पहुँचा। रामहरिजी कदम्बपर चढ़े कोठरीमें रखी हुई लालटेनकी मामूली रोशनीके उजियारेमें भयचकित नेत्रोंसे देख रहे थे और मन-ही-मन श्यामसुन्दरको पुकार रहे थे।

हाराण और तीनकौड़ीने समझा—तख्तेपर ब्राह्मण सोया है। नशेमें चूर थे। हाराणने पूरा जोर लगाकर खाँडा चलाया और उसी क्षण धन्नाका सिर धड़से अलग होकर धड़ामसे नीचे गिर पड़ा।

अब जो दृश्य उपस्थित हुआ, उसे याद करते ही हृदय काँपता है। हाराण और तीनकौड़ीने भयभरी आँखोंसे देखा—'अरे, यह तो धन्नाका सिर है।' बस, उसी क्षण सारा नशा उतर गया और खाँडेको दूर फेंककर हाराण अपने प्यारे पुत्र धन्नाके सिरको छातीसे लगाकर पागलकी भाँति रोने लगा। तीनकौड़ीने इधर-उधर ब्राह्मणको बहुत खोजा, पर कहीं पता नहीं लगा। रामहरिजी तो प्राणभयसे अत्यन्त व्याकुल होकर श्यामसुन्दरका

स्मरण करने लगे। उस समय उनका स्मरण किन-किन भावोंसे होता होगा, इसका अनुमान वैसी स्थितिमें स्वयं पड़े बिना नहीं लगाया जा सकता। धन्नाके शवको लेकर जब वे लोग टूटे घरसे निकलकर जंगलमें चले गये, तब ब्राह्मणके प्राणोंमें प्राण आये। तबतक झड़-वृष्टि बहुत कम हो गयी थी और रात भी थोड़ी ही शेष थी। ब्राह्मणदेवता धीरेसे उतरे और इधर-उधर सतर्क दृष्टिसे देखते हुए घरसे निकलकर चल दिये। भगवान्‌की कृपासे उन्हें रास्ता मिल गया। हाराण और तीनकौड़ी दूसरी ओर गये थे। इसलिये इनपर कोई विपत्ति नहीं आयी।

कुछ दूर धीरे-धीरे चलकर फिर रामहरिजी दौड़े और पक्की सड़कपर पहुँच गये। उस समय कई लोगोंका और भी साथ हो गया। रामहरिजी भगवान् श्यामसुन्दरका मन-ही-मन गुण गाते हुए सीधे घर पहुँचे। बस, तबसे उनका जीवन भगवान्‌के भजनमें ही बीता।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

डाकू भगत

पुराने जमानेकी बात है। एक धनी गृहस्थके घर भगवत्कथाका बड़ा सुन्दर आयोजन हो रहा था। वैशाखका महीना, शुक्लपक्षकी रात्रिका समय। अतिथि-अभ्यागतोंकी सुख-सुविधाके लिये सब प्रकारका प्रबन्ध किया गया था। जूही, बेला, मौलसिरी आदि सुगन्धित पुष्पोंकी सौरभसे दिशाएँ सुवासित हो रही थीं। भगवान्‌के नैवेद्यके लिये आम, अंगूर, अनार, सेव आदि फल तराशे जा रहे थे। सारी सामग्री तैयारी हो जानेपर विधिपूर्वक भगवान्‌की पूजा सम्पन्न हुई। भगवान्‌की मनोहर मूर्तिके दर्शन, भगवत्कथाके श्रवण, सुगन्धित पुष्पोंके आघ्राण और शान्तिमय वातावरणके प्रभावसे सभी उपस्थित सज्जन लोकोत्तर आनन्दका आस्वादन करने लगे। सब लोग इस पवित्र उत्सव-कार्यमें इतने संलग्न और तन्मय हो गये कि उन्हें समयका कुछ ध्यान ही न रहा।

कथावाचक पण्डितजी विद्वान् तो थे ही, अच्छे गायक भी थे। वे बीच-बीचमें भगवत्सम्बन्धी भावपूर्ण पदोंका मधुर कण्ठसे गान भी करते। पहले उन्होंने श्रीमद्भागवतके आधारपर संक्षेपमें भगवान्‌के जन्मकी कथा सुनायी, फिर नन्दोत्सवका वर्णन करते-करते बिलावल रागमें एक मधुर पद गया—

आनँद आज नंदके द्वार।

दास अनन्य भजन रस कारण प्रगटे लाल मनोहर ग्वार॥
चंदन सकल धेनु तन मंडित कुसुम दाम सोभित आगार।
पूरन कुंभ बने तोरन पर बीच रुचिर पीपरकी डार॥
जुवति जूथ मिलि गोप बिराजत बाजत प्रनव मृदंग सितार।
जय (श्रीहित) हरिवंश अजिर बर बीथिन दधि मधु दुग्ध हरदके खार॥

कथाका प्रसंग आगे चला। श्रोतागण व्यवहारकी चिन्ता और

शरीरकी सुधि भूलकर भगवदानन्दमें मस्त हो गये। बहुतोंके शरीरमें रोमांच हो आया। कितनोंकी आँखोंमें आँसू छलक आये। सभी तन्मय हो रहे थे।

उसी समय सुयोग देखकर एक डाकू उस धनी गृहस्थके घरमें घुस आया और चुपचाप धन-रत्न ढूँढ़ने लगा। परंतु भगवान्‌की ऐसी लीला कि बहुत प्रयास करनेपर भी उसके हाथ कुछ नहीं लगा। वह जिस समय कुछ-न-कुछ हाथ लगानेके लिये इधर-उधर ढूँढ़ रहा था, उसी समय उसका ध्यान यकायक कथाकी ओर चला गया। कथावाचक पण्डितजी महाराज ऊँचे स्वरसे कह रहे थे—'प्रातःकाल हुआ। पूर्वदिशा उषाकी मनोरम ज्योति और अरुणकी लालिमासे रँग गयी। उस समय व्रजकी झाँकी अलौकिक हो रही थी। वहाँका पत्ता-पत्ता चमक रहा था। पक्षिगण मानो इसलिये और भी जोर-जोरसे चहक रहे थे कि श्रीकृष्ण शीघ्र-से-शीघ्र आकर उनके नेत्रोंकी प्यास बुझावें। गौएँ और बछड़े सिर उठा-उठाकर नन्दबाबाके महलकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे देख रहे थे कि अब हमारे प्यारे श्रीकृष्ण हमें आनन्दित करनेके लिये आ ही रहे होंगे। उसी समय भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा आदि ग्वालबालोंने आकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको बड़े प्रेमसे पुकारा—हमारे प्यारे कन्हैया, आओ न। अबतक तुम सो ही रहे हो? देखो, गौएँ तुम्हें देखे बिना रँभा रही हैं। हम कभीसे खड़े हैं। चलो, वनमें गौएँ चरानेके लिये चलें। दाऊ दादा, तुम इतनी देर क्या कर रहे हो? इस प्रकार ग्वालबालोंकी पुकार और जल्दी देखकर नन्दरानी अपने प्यारे पुत्रोंको बड़े ही मधुर स्वरसे जगाने लगीं—

तुम जागौ मेरे लाड़िले गोकुल सुखदाई।
कहति जननि आनंद सौं उठो कुँवर कन्हाई॥

तुमको माखन-दूध दधि मिश्री हौं ल्याई।
उठि कै भोजन कीजियै पकवान मिठाई॥
सखा द्वार परभात सौं सब टेर लगाई।
बनको चलिए साँवरे दयो तरनि दिखाई॥

फिर मैयाने स्नेहसे उन्हें माखन-मिश्रीका तथा भाँति-भाँतिके पकवानोंका कलेऊ करवाकर बड़े चावसे खूब सजाया। लाख करोड़ रुपयोंके गहने, हीरे-जवाहर और मोतियोंसे जड़े स्वर्णालंकार अपने बच्चोंको पहनाये। मुकुटमें, बाजूबन्दमें, हारमें जो मणियाँ जगमगा रही थीं, उनके प्रकाशके सामने प्रात:कालका उजेला फीका पड़ गया। इस प्रकार भलीभाँति सजाकर नन्दरानीने अपने लाड़ले पुत्रोंके सिर सूँघे और फिर बड़े प्रेमसे गौ चरानेके लिये उन्हें विदा किया।' इतनी बातें डाकूने भी सुनीं और तो कुछ उसने सुना था नहीं। अब वह सोचने लगा कि अरे यह तो बड़ा सुन्दर सुयोग है, मैं छोटी-मोटी चीजोंके लिये इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहता हूँ। यह तो अपार सम्पत्ति हाथ लगनेका अवसर है। केवल दो बालक ही तो हैं। उनके दोनों गालोंपर दो-दो चपत जड़े नहीं कि वे स्वयं अपने गहने निकालकर मुझे सौंप देंगे। यह सोचकर वह डाकू धनी गृहस्थके घरसे बाहर निकल आया और कथाके समाप्त होनेकी बाट देखने लगा।

डाकूके आनन्दकी सीमा नहीं थी। कथावाचक पण्डितजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके सुन्दर शरीरोंपर सजे हुए गहनोंकी जो बात कही थी, उसे याद कर-करके वह खिल उठता था—'अहा, वे गहने कितने चमकदार होंगे। उनको छीनकर लाते ही मैं बहुत बड़ा धनी हो जाऊँगा। फिर तो मेरे सुखका क्या पूछना। उन गहनोंके चिन्तनसे ही उसके हृदयमें प्रकाशकी रेखा खिंच गयी। गहनोंके साथ ही भगवान्‌के दिव्य

स्वरूपका भी चिन्तन होता ही था! वह अपने दुःख दारिद्र्यको भूलकर सुखके समुद्रमें डूबने उतराने लगा। बहुत रात बीतनेपर कथा समाप्त हुई। भगवानके नाम और जयकारके नारोंसे आकाश गूँज उठा। भक्त गृहस्थ बड़ी नम्रतासे ठाकुरजीका प्रसाद ग्रहण करनेके लिये सब श्रोताओंसे अनुरोध करने लगे। प्रसाद बँटने लगा। आनन्दकी धारा बह चली। जहाँ देखो, लोग भगवान्का प्रसाद पा-पाकर मस्त हो रहे हैं। इधर यह सब हो रहा था, परंतु डाकूके मनमें इन बातोंका कोई ध्यान नहीं था। वह तो रह-रहकर कथावाचककी ओर देख रहा था। उसकी आँखें कथावाचकजीकी गतिविधिपर जमी हुई थी। कुछ समय बाद प्रसाद पाकर कथावाचकजी अपने डेरेकी ओर चले। डाकू भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

जब पण्डितजी खुले मैदानमें पहुँचे तब डाकूने पीछेसे कुछ कड़े स्वरमें पुकारकर कहा—'ओ पण्डितजी! खड़े रहो।' पण्डितजीके पास दक्षिणाके रुपये-पैसे भी थे, वे कुछ डरकर और तेज चालसे चलने लगे। डाकूने दौड़ते हुए कहा—'पण्डितजी, खड़े हो जाओ। यों भागनेसे नहीं बच सकोगे।' पण्डितजीने देखा कि अब छुटकारा नहीं है। वे लाचार होकर ठमक गये। डाकूने उनके पास पहुँचकर कहा—'देखिये पण्डितजी, आप जिन कृष्ण और बलरामकी बात कह रहे थे, उनके लाखों-करोड़ों रुपयोंके गहनोंका वर्णन कर रहे थे, उनका घर कहाँ है? वे दोनों गौएँ चरानेके लिये कहाँ जाते हैं? आप सारी बातें ठीक-ठीक बता दीजिये; यदि जरा भी टाल-मटोल की तो बस, देखिये मेरे हाथमें कितना मोटा डंडा है, यह तुरंत आपके सिरके टुकड़े-टुकड़े कर देगा।' पण्डितजीने देखा, उसका लंबा-चौड़ा दैत्य-सा शरीर बड़ा ही बलिष्ठ है। मजबूत हाथोंमें मोटी लाठी

है, आँखोंसे क्रूरता टपक रही है। उन्होंने सोचा, हो-न-हो यह कोई डाकू है। फिर साहस बटोरकर कहा—'तुम्हारा उनसे क्या काम है? डाकूने तनिक जोर देकर कहा—'जरूरत है।' पण्डितजी बोले—'जरूरत बतानेमें कुछ अड़चन है क्या?' डाकूने कहा—'पण्डितजी, मैं डाकू हूँ। मैं उनके गहने लूटना चाहता हूँ। गहने मेरे हाथ लग गये तो आपको भी अवश्य ही कुछ दूँगा। देखिये, टाल-मटोल मत कीजिये। ठीक-ठीक बताइये।' पण्डितजीने समझ लिया कि यह वज्रमूर्ख है। अब उन्होंने कुछ हिम्मत करके कहा—'तब इसमें डर किस बातका है? मैं तुम्हें सब कुछ बतला दूँगा। लेकिन यहाँ रास्तेमें तो मेरे पास पुस्तक नहीं है। मेरे डेरेपर चलो। मैं पुस्तक देखकर सब ठीक-ठीक बतला दूँगा।' डाकू उनके साथ-साथ चलने लगा।

डेरेपर पहुँचकर पण्डितजीने किसीसे कुछ कहा नहीं। पुस्तक बाहर निकाली और वे डाकूको भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी रूपमाधुरी सुनाने लगे। उन्होंने कहा—'श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंके ही चरण-कमलोंमें सोनेके सुन्दर नूपुर हैं, जो अपनी रुनझुन ध्वनिसे सबके मन मोह लेते हैं। श्यामवर्णके श्रीकृष्ण पीतवर्णका और गौरवर्णके बलराम नीलवर्णका वस्त्र धारण कर रहे हैं। दोनोंकी कमरमें बहुमूल्य मोतियोंसे जड़ी सोनेकी करधनी शोभायमान है। गलेमें हीरे-जवाहरातके स्वर्णहार हैं। हृदयपर कौस्तुभमणि झलमला रही है। ऐसी मणि जगत्में और कोई है ही नहीं। कलाईमें रत्नजटित सोनेके कंगन, कानोंमें मणिकुण्डल, सिरपर मनोहर मोहन चूड़ा। घुँघराले काले-काले बाल, ललाटपर कस्तूरीका तिलक, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान, आँखोंसे मानो आनन्द और प्रेमकी वर्षा हो रही है। श्रीकृष्ण अपने कर-कमलोंमें सोनेकी वंशी लिये उसे अधरोंसे लगाये

रहते हैं। उनकी अंग-कान्तिके सामने करोड़ों सूर्योंकी कोई गिनती नहीं। रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंकी माला, तोतेकी-सी नुकीली नासिका, कुन्द-बीजके समान धौले दाँतोंकी पाँत, बड़ा लुभावना रूप है। अजी, जब वे त्रिभंगललित भावसे खड़े होते हैं; देखते-देखते नेत्र तृप्त ही नहीं होते। बाँकेबिहारी श्रीकृष्ण जब अपनी बाँसुरीमें 'राधे-राधे' की मधुर तान छेड़ते हैं, तब बड़े-बड़े ज्ञानी भी अपनी समाधिसे पिण्ड छुड़ाकर उसे सुननेके लिये दौड़ आते हैं। यमुनाके तटपर वृन्दावनमें कदम्बवृक्षके नीचे प्रायः उनके दर्शन मिलते हैं। वनमाली श्रीकृष्ण और हलधारी बलराम।'

डाकूने पूछा—'अच्छा पण्डितजी, सब गहने मिलाकर कितने रुपयोंके होंगे?' पण्डितजीने कहा—'अहो, इसकी कोई गिनती नहीं है। करोड़ों-अरबोंसे भी ज्यादा!' डाकू—'तब क्या जितने गहनोंके आपने नाम लिये, उनसे भी अधिक हैं?' पण्डितजी—'तो क्या? संसारकी समस्त सम्पत्ति एक ओर और कौस्तुभमणि एक ओर। फिर भी कोई तुलना नहीं।' डाकूने आनन्दसे गद्‌गद होकर कहा—'ठीक है, ठीक है! और कहिये, वह कैसी है?' पण्डितजी—'वह मणि जिस स्थानपर रहती है, सूर्यके समान प्रकाश हो जाता है। वहाँ अँधेरा रह नहीं सकता। वैसा रत्न पृथ्वीमें और कोई है ही नहीं?' डाकू—'तब तो उसके दाम बहुत ज्यादा होंगे। क्या बोले? एक बार भलीभाँति समझा तो दीजिये। हाँ, एक बात तो भूल ही गया। मुझे किस ओर जाना चाहिये?' पण्डितजीने सारी बातें दुबारा समझा दीं। डाकूने कहा—'देखिये पण्डितजी, मैं शीघ्र ही आकर आपको कुछ दूँगा। यहाँसे ज्यादा दूर तो नहीं है न? मैं एक ही रातमें पहुँच जाऊँगा, क्यों? अच्छा; हाँ-हाँ, एक बात और बताइये। क्या वे प्रतिदिन गौएँ चराने जाते हैं?' पण्डितजी—'हाँ, और तो क्या?' डाकू—'कब आते हैं?'

पण्डितजी—'ठीक प्रातःकाल। उस समय थोड़ा-थोड़ा अँधेरा भी रहता है।' डाकू—'ठीक है मैंने सब समझ लिया। हाँ तो, अब मुझे किधर जाना चाहिये?' पण्डितजी—'बराबर उत्तरकी ओर चले जाओ।' डाकू प्रणाम करके चल पड़ा।

पण्डितजी मन-ही-मन हँसने लगे। देखो, यह कैसा पागल है! थोड़ी देर बाद उन्हें चिन्ता हो आयी, यह मूर्ख दो-चार दिन तो ढूँढ़नेका प्रयत्न करेगा। फिर लौटकर कहीं यह मुझपर अत्याचार करने लगा तो? किंतु नहीं, यह बड़ा विश्वासी है। लौटकर आयेगा तो एक रास्ता और बतला दूँगा। वह दो-चार दिन भटकेगा, तबतक मैं कथा समाप्त करके यहाँसे चलता बनूँगा। इससे पिण्ड छुड़ानेका और उपाय ही क्या है? पण्डितजी कुछ-कुछ निश्चिन्त हुए।

डाकू अपने घर गया। उसकी भूख, प्यास, नींद सब उड़ गयी। वह दिन-रात गहनोंकी बात सोचा करता, चमकीले गहनोंसे लदे दोनों नयन-मन-हरण बालक उसकी आँखोंके सामने नाचते रहते। क्षणभरके लिये भी तो उसका मन इधर-उधर नहीं जाता। कहीं भूल जाय तो हाथ लगी सम्पत्ति खो जायगी। भगवान्‌के दिव्य अंग और उसपर सजे गहनोंकी चमक-दमक उसकी आँखोंके सामने सदा झिलमिलाती रहती। इसी ध्यानमें रात बीत गयी। उसे पतातक न चला। सूर्योदय हुआ। फिर भी उसे एक ही चिन्ता, एक ही ध्यान। दुनियाके लोग अपने-अपने कामोंमें लगे थे। कोई मनोरंजन कर रहा था, कोई आलस्यसे दिन काट रहा था, हवा चल रही थी, नदी बह रही थी, पक्षी चहक रहे थे और डाकू मन-ही-मन श्याम-गौर किशोरोंके देदीप्यमान शरीरोंसे गहने उतारनेमें व्यस्त था। एक क्षणकी तरह पलक मारते-मारते सारा दिन बीत गया। परंतु

डाकूके मनमें एक ही धुन। लगन हो तो ऐसी! मस्ती हो तो ऐसी!! अँधेरा हुआ, डाकूने लाठी उठाकर कंधेपर रखी। वह उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा। वह उत्तर भी उसकी अपनी धुनका ही था, दूसरोंके देखनेमें शायद वह दक्खिन ही जा रहा हो! उसे इस बातका भी पता नहीं था। उसके पैर धरतीपर पड़ रहे हैं या काँटोंपर। ठीक ही तो है—

जाहि लगन लगी घनस्यामकी!
धरत कहूँ पग परत कितैहूँ भूल जाय सुधि धामकी॥
छबि निहार नहिं रहत सार कछु घड़ि पल निसिदिन जामकी।
जित मुँह उठै तितै ही धावै सुरति न छाया घामकी॥
अस्तुति निंदा करौ भलै ही मेंड़ तजी कुल गामकी।
नारायन बौरी भइ डोलै रही न काहू कामकी॥

चलते-चलते एक स्थानपर डाकूकी आँख खुली। उसने देखा, बड़ा सुन्दर हरा-भरा वन है। एक नदी भी कल-कल करती बह रही है। उसने सोचा, निश्चय किया 'यही है, यही है! परंतु वह कदम्बका पेड़ कहाँ है?' डाकू बड़ी सावधानीके साथ एक-एक वृक्षके पास जाकर कदम्बको पहचाननेकी चेष्टा करने लगा। उसने न जाने कितने वृक्षोंका स्पर्श किया, कितनोंके पत्ते देखे! अन्तमें वहाँ उसे एक कदम्ब मिल ही गया। अब उसके आनन्दकी सीमा न रही! उसने संतोषकी साँस ली और आस-पास आँखें दौड़ायीं। एक छोटा-सा पर्वत, घना जंगल और गौओंके चरनेका मैदान भी दीख गया। हरी-हरी दूब रातके स्वाभाविक अँधेरेमें घुल-मिल गयी थी। फिर भी उसके मनके सामने गौओंके चरने और चरानेवालोंकी एक छटा छिटक ही गयी। अब डाकूके मनमें एक ही विचार था। कब सबेरा हो, कब अपना काम बने। वह एक-एक क्षण सावधानीसे देखता

और सोचता कि आज सबेरा होनेमें कितनी देर हो रही है! पल-पल उसके उत्साहमें वृद्धि होती। वह देखता कि मेरा मनोरथ पूरा होनेका समय निकट आ रहा है। वह कदम्बवृक्षकी एक-एक डालपर पैनी दृष्टि डालकर और चढ़कर इस बातकी परीक्षा करता कि कहाँ बैठनेसे मैं उन दोनोंके आते ही झटपट कूद पड़ूँगा और गहने छीन लेनेमें सुविधा होगी। मैं किस तरह उन्हें पकड़ूँगा, किस तरह गहने छीनूँगा, इस बातको वह बार-बार पक्की करने लगा। ज्यों-ज्यों रात बीतती, त्यों-त्यों उसकी चिन्ता, उद्वेग, उत्तेजना, आग्रह और आकुलता बढ़ती जाती।

कभी-कभी उसे ऐसा मालूम होता, मानो कौस्तुभमणि उसकी आँखोंके सामने चमक गयी हो। उसने सोचा, कौस्तुभमणिसे तो अँधेरा दूर हो जाता है। यदि उन बालकोंने मणिके प्रकाशमें मुझे देख लिया तो सारा किया-कराया चौपट हो जायगा। वे मुझे देखकर भागनेकी चेष्टा करेंगे। हाँ, तो मैं अभी कदम्बकी सबसे ऊँची डालपर चढ़ जाऊँ और पत्तोंमें छिपकर उनकी बाट देखूँ। वह पेड़पर चढ़ गया। अभी थोड़ी ही देर हुई कि उसके मनमें आया—'नहीं, नहीं; यहाँसे जितनी देरमें मैं उतर पाऊँगा, उतनी देरमें तो वे भाग जायँगे। यहाँ ठहरना ठीक नहीं।' वह नीचे उतर आया। सोचने लगा—'कुछ वृक्षोंके झुरमुटमें चुपचाप खड़ा हो जाऊँ और आते ही झपटकर उन्हें पकड़ लूँ।' वह जाकर वृक्षोंकी आड़में खड़ा हो गया। खड़े होते ही उसके मनमें विचारोंका तूफान उठने लगा—'ना-ना, शायद वे दोनों मुझे यहाँ देख लें। तब तो सारा बना बनाया काम बिगड़ जायगा। अच्छा, सामनेवाले गड्ढेमें छिप जाऊँ। ठीक तो है, वह आते ही बाँसुरी बजायेगा। वंशीकी धुन सुनते ही मैं दौड़कर उसे पकड़ लूँगा।' यह विचारकर डाकू गड्ढेमें जाकर छिप रहा। क्षणभर बाद ही उसके मनमें आया कि 'कहीं वंशीकी धुन मेरे कानोंमें न

पड़ी तो ? बाहर रहना ही ठीक है।' अब वह बाहर आकर बार-बार कान दे-देकर वंशीकी धुन अकलनेमें लगा। जब उसे किसी शब्दकी आहट न मिली तब वह फिर कदम्बपर चढ़ गया और देखने लगा कि किसी ओर उजेला तो नहीं है। कहींसे वंशीकी आवाज तो नहीं आ रही है। उसने अपने मनको समझाया—'अभी सबेरा होनेमें देर है। मैं ज्यों ही वंशीकी धुन सूनूँगा, त्यों ही टूट पड़ूँगा।' इस प्रकार सोचता हुआ बड़ी ही उत्कण्ठाके साथ वह डाकू सबेरा होनेकी बाट जोहने लगा।

देखते-ही-देखते मानो किसीने प्राची दिशाका मुख रोलीके रंगसे रँग दिया। डाकूके हृदयमें आकुलता और भी बढ़ गयी। वह पेड़से कूदकर जमीनपर आया, परंतु वंशीकी आवाज सुनायी न पड़नेके कारण फिर उछलकर कदम्बपर चढ़ गया। वहाँ भी किसी प्रकारकी आवाज सुनायी नहीं पड़ी। उसका हृदय मानो क्षण-क्षणपर फटता जा रहा था। अभी-अभी उसका हृदय विहर उठता, परंतु यह क्या उसकी आशा पूर्ण हो गयी! दूर, बहुत दूर वंशीकी सुरीली स्वर-लहरी लहरा रही है। वह वृक्षसे कूद पड़ा। हाँ, परंतु हृदयपर फिर अविश्वासकी रेखा खिंच गयी। कहीं मेरा भ्रम तो नहीं था! वह तुरंत वृक्षकी सबसे ऊँची डालपर चढ़ गया। हाँ, ठीक है, ठीक है; बाँसुरी ही तो है। अच्छा, यह स्वर तो और समीप होता जा रहा है! डाकू आनन्दके आवेशमें अपनी सुध-बुध खो बैठा और मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ा। कुछ ही क्षणोंमें उसकी बेहोशी दूर हुई, आँखें खुलीं; वह उठकर खड़ा हो गया। देखा तो पास ही जंगलमें एक दिव्य शीतल प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। उस मनोहर प्रकाशमें दो भुवन-मोहन बालक अपने अंगकी अलौकिक छटा बिखेर रहे हैं। गौएँ और ग्वाल-बाल उनके आगे-आगे कुछ दूर निकल गये हैं।

डाकूने उन्हें देखा, अभी पुकार भी नहीं पाया था कि मन मुग्ध हो गया—'अहाहा! कैसे सुन्दर चेहरे हैं इनके, आँखोंसे तो अमृत ही बरस रहा है और इनके तो अंग-अंग बहुमूल्य आभूषणोंसे भरे हैं। हाय-हाय! इतने नन्हें-नन्हें सुकुमार शिशुओंको माँ-बापने गौएँ चरानेके लिये कैसे भेजा? ओह! मेरा तो जी भरा आता है—मन चाहता है, इन्हें देखता ही रहूँ! इनके गहने उतारनेकी बात कैसी, इन्हें तो और भी सजाना चाहिये। नहीं, मैं इनके गहने नहीं छीनूँगा। ना, ना, गहने नहीं छीनूँगा तो फिर आया ही क्यों? ठीक है। मैं गहने छीन लूँगा। परंतु इन्हें मारूँगा नहीं। बाबा रे बाबा, मुझसे यह काम न होगा! दुत् तेरेको! यह मोह-छोह कैसा? मैं डाकू हूँ, डाकू! मैं और दया! बस, बस, मैं अभी गहने छीने लेता हूँ।' यह कहते-कहते वह श्रीकृष्ण और बलरामकी ओर दौड़ा। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके पास पहुँचकर उनका स्वरूप देखते ही उसकी चेतना एक बार फिर लुप्त हो गयी। पैर लड़खड़ाये और वह गिर पड़ा। फिर उठा कुछ देर टकटकी लगाये देखता रहा, आँखें आँसुओंसे भर आयीं। फिर न मालूम क्या सोचा, हाथमें लाठी लेकर उनके सामने गया और बोला—'खड़े हो जाओ। सारे गहने निकालकर मुझे दे दो।'

श्रीकृष्ण—'हम अपने गहने तुम्हें क्यों दें?'

डाकू—'दोगे नहीं? मेरी लाठीकी ओर देखो।'

श्रीकृष्ण—'लाठीसे क्या होगा?'

डाकू—'अच्छा, क्या होगा? गहना न देनेपर तुम्हारे सिर तोड़ डालूँगा, और क्या होगा?'

श्रीकृष्ण—'नहीं, हमलोग गहने नहीं देंगे।'

डाकू—'अभी-अभी मैं कान पकड़के ऐठूँगा और सारे गहने छीन-छानकर तुम्हें नदीमें फेंक दूँगा।'

श्रीकृष्ण—(जोरसे) 'बाप-रे-बाप! ओ बाबा!! ओ बाबा!!!'

डाकूने झपटकर अपने हाथसे श्रीकृष्णका मुँह दबाना चाहा, परंतु स्पर्श करते ही उसके सारे शरीरमें बिजली दौड़ गयी। वह बेहोश होकर धड़ामसे धरतीपर गिर पड़ा। कुछ क्षणोंके बाद जब होश हुआ तब वह श्रीकृष्णसे बोला—'अरे, तुम दोनों कौन हो? मैं ज्यों-ज्यों तुम दोनोंको देखता हूँ त्यों-ही-त्यों तुम मुझे और सुन्दर, और मधुर, और मनोहर क्यों दीख रहे हो? मेरी आँखोंकी पलकें पड़नी बंद हो गयीं। हाय! हाय! मुझे रोना क्यों आ रहा है! मेरे शरीरके सब रोएँ क्यों खड़े हो गये हैं। जान गया, जान गया, तुम दोनों देवता हो, मनुष्य नहीं हो।'

श्रीकृष्ण—[मुसकराकर] 'नहीं, हम मनुष्य हैं। हम ग्वालबाल हैं। हम व्रजके राजा नन्दबाबाके लड़के हैं।'

डाकू—'अहा! कैसी मुसकान है! जाओ, जाओ; तुमलोग गौएँ चराओ। मैं अब गहने नहीं चाहता। मेरी आशा-दुराशा, मेरी चाह-आह सब मिट गयीं। हाँ, मैं चाहता हूँ कि तुम दोनोंके सुरंग अंगोंमें अपने हाथोंसे और भी गहने पहनाऊँ! जाओ, जाओ। हाँ, एक बार अपने दोनों लाल-लाल चरण-कमलोंको तो मेरे सिरपर रख दो। हाँ, हाँ; जरा हाथ तो इधर करो! मैं एक बार तुम्हारी स्निग्ध हथेलियोंका चुम्बन करके अपने प्राणोंको तृप्त कर लूँ। ओह, तुम्हारा स्पर्श कितना शीतल, कितना मधुर! धन्य! धन्य!! तुम्हारे मधुर स्पर्शसे हृदयकी ज्वाला शान्त हो रही है। आशा-अभिलाषा मिट गयी। जाओ, हाँ-हाँ अब तुम जाओ। मेरी भूख-प्यास मिट गयी। अब कहीं जानेकी इच्छा नहीं होती। मैं यहीं रहूँगा। तुम दोनों रोज इसी रास्तेसे जाओगे न? एक बार केवल एक क्षणके लिये प्रतिदिन, हाँ, प्रतिदिन मुझे दर्शन देते रहना। देखो, भूलना नहीं। किसी दिन नहीं आओगे—दर्शन नहीं दोगे तो याद रखो, मेरे प्राण छटपटाकर छूट ही जायँगे।'

श्रीकृष्ण—'अब तुम हमलोगोंको मारोगे तो नहीं? गहने तो नहीं छीन लोगे? हाँ, ऐसी प्रतिज्ञा करो तो हमलोग प्रतिदिन आ सकते हैं।'

डाकू—'प्रतिज्ञा, सौ बार प्रतिज्ञा! अरे भगवान्‌की शपथ! तुम लोगोंको मैं कभी नहीं मारूँगा। तुम्हें मार सकता हो ऐसा कोई है जगत्‌में? तुम्हें तो देखते ही सारी शक्ति गायब हो जाती है, मन ही हाथसे निकल जाता है। फिर कौन मारे और कैसे मारे? अच्छा, तुमलोग जाओ!'

श्रीकृष्ण—'यदि तुम्हें हमलोग गहना दें तो लोगे?'

डाकू—'गहना! गहना!! अब गहने क्या होंगे? अब तो कुछ भी लेनेकी इच्छा नहीं है।'

श्रीकृष्ण—'क्यों नहीं, ले लो। हम तुम्हें दे रहे हैं न?'

डाकू—'तुम दे रहे हो? तुम मुझे दे रहे हो? तब तो लेना ही पड़ेगा, परंतु तुम्हारे माँ-बाप तुमपर नाराज होंगे, तुम्हें मारेंगे तो?'

श्रीकृष्ण—'नहीं-नहीं, हम राजकुमार हैं। हमारे पास ऐसे-ऐसे न जाने कितने गहने हैं। तुम चाहो तो तुम्हें और भी बहुत-से गहने दे सकते हैं।'

डाकू—'ऊहूँ, मैं क्या करूँगा? हाँ, हाँ; परंतु तुम्हारी बात टाली भी तो नहीं जाती। क्या तुम्हारे पास और गहने हैं? सच बोलो।'

श्रीकृष्ण—'हैं नहीं तो क्या हम बिना हुए ही दे रहे हैं? लो तुम इन्हें ले जाओ।'

भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीरपरसे गहने उतारकर देने लगे। डाकूने कहा—'देखो भाई! यदि तुम देना ही चाहते हो, तो मेरा यह दुपट्टा ले लो और इसमें अपने हाथोंसे बाँध दो। किंतु देखो

लाला! यदि तुम मेरी इच्छा जानकर बिना मनके दे रहे हो तो मुझे गहने नहीं चाहिये। मेरी इच्छा तो अब बस, एक यही है कि रोज एक बार तुम्हारे मनोहर मुखड़ेको मैं देख लिया करूँ और एक बार तुम्हारे चरणतलसे अपने सिरका स्पर्श करा लिया करूँ।' श्रीकृष्ण—'नहीं-नहीं, बेमनकी बात कैसी? तुम फिर आना, तुम्हें इस बार और गहने देंगे।' श्रीकृष्णने उसके दुपट्टेमें सब गहने बाँध दिये। डाकूने गहनेकी पोटली हाथमें लेकर कहा—'क्यों भाई! मैं फिर आऊँगा तो तुम मुझे और गहने दोगे न? गहने चाहे न देना परंतु दर्शन जरूर देना।' श्रीकृष्णने कहा—'अवश्य! गहने भी और दर्शन भी दोनों।' डाकू गहने लेकर अपने घरके लिये रवाना हुआ।

डाकू आनन्दके समुद्रमें डूबता-उतराता घर लौटा। दूसरे दिन रातके समय कथावाचक पण्डितजीके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा और गहनोंकी पोटली उनके सामने रख दी। बोला—'देखिये, देखिये; पण्डितजी! कितने गहने लाया हूँ। आपकी जितनी इच्छा हो ले लीजिये। पण्डितजी! उसने और गहने देना स्वीकार किया है।' पण्डितजी तो यह सब देख-सुनकर चकित रह गये। उन्होंने बड़े विस्मयके साथ कहा—'मैंने जिनकी कथा कही थी उनके गहने ले आया?' डाकू बोला—'और तब क्या, देखिये न यह सोनेकी वंशी! यह सिरका मोहन चूड़ामणि!!' पण्डितजी हक्के-बक्के रह गये। बहुत सोचा, बहुत विचारा, परंतु वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके। जो अनादि अनन्त पुरुषोत्तम हैं। बड़े-बड़े योगी सारे जगत्‌को तिनकेके समान त्यागकर, भूख-प्यास-नींदकी उपेक्षाकर सहस्र-सहस्र वर्षपर्यन्त जिनके ध्यानकी चेष्टा करते हैं, परंतु दर्शनसे वंचित ही रह जाते हैं; उन्हें यह डाकू देख आया! उनके गहने ले आया!! अजी

कहाँकी बात है? असम्भव। हो नहीं सकता। परंतु यह क्या? यह चूड़ामणि, यह बाँसुरी, ये गहने सभी तो अलौकिक हैं। इसे ये सब कहाँ, किस तरह मिले? कुछ समझमें नहीं आता। क्षणभर ठहरकर पण्डितजीने कहा—'क्यों भाई! तुम मुझे उसके दर्शन करा सकते हो?' डाकू—'क्यों नहीं, कल ही चलिये न?' पण्डितजी पूरे अविश्वासके साथ केवल उस घटनाका पता लगानेके लिये डाकूके साथ चल पड़े और दूसरे दिन नियत स्थानपर पहुँच गये। पण्डितजीने देखा—एक सुन्दर-सा वन है। छोटी-सी नदी बह रही है, बड़ा-सा मैदान और कदम्बका वृक्ष भी है। वह व्रज नहीं है, यमुना नहीं है; पर है कुछ वैसा ही। रात बीत गयी, सबेरा होनेके पहले ही डाकूने कहा—देखिये पण्डितजी! आप नये आदमी हैं। आप किसी पेड़की आड़में छिप जाइये। वह कहीं आपको देखकर न आवे तो? अब प्रात:काल होनेमें विलम्ब नहीं है। अभी आवेगा।' डाकू पण्डितजीसे बात कर ही रहा था कि मुरलीकी मोहक ध्वनि उसके कानोंमें पड़ी। वह बोल उठा—'सुनिये, सुनिये पण्डितजी! बाँसुरी बज रही है! कितनी मधुर! कितनी मोहक! सुन रहे हैं न?' पण्डितजी—'कहाँ जी, मैं तो कुछ नहीं सुन रहा हूँ। क्या तुम पागल हो गये हो?' डाकू—'पण्डितजी! पागल नहीं, जरा ठहरिये, अभी आप उसे देखेंगे। रुकिये, मैं पेड़पर चढ़कर देखता हूँ कि वह अभी कितनी दूर है?'

डाकूने पेड़पर चढ़कर देखा और बोला—'पण्डितजी! पण्डितजी!! अब वह बहुत दूर नहीं है।' उतरकर उसने देखा कि थोड़ी दूरपर वैसा ही विलक्षण प्रकाश फैल रहा है। वह आनन्दके मारे पुकार उठा—'पण्डितजी! यह है, यह है। उसके शरीरकी दिव्य ज्योति सारे वनको चमका रही है।' पण्डितजी—'मैं तो

कुछ नहीं देखता।' डाकू—'ऐसा क्यों पण्डितजी! वह इतना निकट है, इतना प्रकाश है; फिर भी आप नहीं देख पाते हैं? अजी आप जंगल, नदी, नाला सब कुछ देख रहे हैं और उसको नहीं देख पाते?' पण्डितजी—हाँ भाई! मैं तो नहीं देख रहा हूँ। देखो, यदि सचमुच वे हैं तो तुम उनसे कहो कि 'आज तुम जो देना चाहते हो, सब इसी ब्राह्मणके हाथपर दे दो।' डाकूने स्वीकार कर लिया।

अबतक भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी डाकूके पास आकर खड़े हो गये थे। डाकूने कहा—'आओ, आओ! मैं आ गया हूँ। तुम्हारी बाट जोह रहा था।' श्रीकृष्ण—'गहने लोगे?' डाकू—'नहीं भाई! मैं गहने नहीं लूँगा। जो तुमने दिये थे, वे भी तुम्हें देनेके लिये लौटा लाया हूँ, तुम अपना सब ले लो। लेकिन भाई, ये पण्डितजी मेरी बातपर विश्वास नहीं कर रहे हैं। विश्वास करानेके लिये ही मैं इन्हें साथ लाया हूँ। मैं तुम्हारी वंशी-ध्वनि सुनता हूँ। तुम्हारी अंगकान्तिसे चमकते हुए वनको देखता हूँ, तुम्हारे साथ बातचीत करता हूँ। परंतु पण्डितजी यह सब देख-सुन नहीं रहे हैं। यदि तुम इन्हें नहीं दीखोगे तो ये मेरी बातपर विश्वास नहीं करेंगे।' श्रीकृष्ण—'अरे भैया, अभी ये मेरे दर्शनके अधिकारी नहीं हैं। बूढ़े विद्वान् अथवा पण्डित हैं तो क्या हुआ?' डाकू—'नहीं भाई! मैं बलिहारी जाऊँ तुमपर। उनके लिये जो कहो वही कर दूँ। परंतु एक बार इन्हें अपनी बाँकी झाँकी जरूर दिखा दो।' श्रीकृष्णने हँसकर कहा—'अच्छी बात, तुम मुझे और पण्डितजीको एक साथ ही स्पर्श करो।' डाकूके ऐसा करते ही पण्डितजीकी दृष्टि दिव्य हो गयी। उन्होंने मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दरकी बाँकी झाँकीके दर्शन किये। फिर तो दोनों निहाल होकर भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े।

भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीकृष्णकी लीला ऐसी ही है। वे कहीं प्रकट हैं तो कहीं आँखमिचौनी खेल रहे हैं। जिसने विश्वासकी आँखोंसे उन्हें देखना चाहा, उसे वे मिले। ठीक उसी रूपमें, जिस रूपमें उसने चाहा। डाकू और पण्डितमें उनके लिये कोई भेद नहीं है। केवल विश्वास चाहिये, प्रेम चाहिये, लगन चाहिये। क्या हम भी उसी डाकूकी तरह, नहीं-नहीं, भक्तराज डाकूकी तरह विश्वासके नेत्रसे भगवान्‌को देख सकेंगे? अवश्य।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'
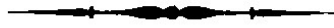
भक्त नवीनचन्द्र

जगदीशपुरके पास बलाई गाँवमें एक ब्राह्मण रहते थे। ब्राह्मण बड़े सदाचारी, भगवद्भक्त और संतोषी थे। उनका नाम था—शरद ठाकुर। ब्राह्मणी भी बड़ी सुशीला और सती थी। यजमानी बहुत थी। बहुत बड़े-बड़े आदमी उनके शिष्य थे। उस समय जैसे ब्राह्मण पुरोहित सदाचारी और विद्वान् होते थे, वैसे ही उनके शिष्य यजमान भी श्रद्धालु और उदार होते थे। शरद ठाकुरको यजमानोंके यहाँसे बिना ही माँगे काफी धन मिलता था। खर्च था बहुत कम, इससे उत्तरोत्तर उनका वैभव बढ़ता ही जाता था। शरद ठाकुरके एकमात्र पुत्र था नवीनचन्द्र। नवीनचन्द्र सरल हृदय था, परंतु माता-पिताका इकलौता पुत्र होनेसे उसपर कोई शासन नहीं था। घरमें धनकी प्रचुरता थी ही। विष्ठापर भिन-भिनानेवाली मक्खियोंके समान नवीनके विलास-वैभवको देखकर उससे लाभ उठानेके लिये अवारे दुराचारी लड़कोंका दल उसके आसपास आ जुटा। संगका रंग चढ़ता ही है। नवीनपर भी कुसंगका असर पड़े बिना न रहा। माता-पिता दुलारके कारण कुछ बोल नहीं सके!

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

'जवानी, धन-सम्पत्ति, घरमें मालिकी और मूर्खता—इनमें एक-एक ही अनर्थ करनेवाली है, फिर जहाँ चारों हों, वहाँ तो कहना ही क्या है?' नवीनचन्द्र भी इसीके अनुसार अनर्थकी राहपर जा चढ़ा। कुछ समय तो यों बीता, परंतु जब अनीतिकी बाढ़ जोरकी हो गयी, तब शरद ठाकुरका माथा ठनका। उन्हें पुत्रकी करतूतोंपर बड़ा दुःख हुआ और पछतावा हुआ अपनी लापरवाहीपर। वे सोचने लगे—'यदि मैं पहलेसे ही सावधान रहता तो नवीनकी यह हालत न होती!

पर अब क्या किया जाय। नवीन अब मेरे कहनेसे ही मान लेगा, ऐसी सम्भावना तो रही नहीं।' शरद ठाकुर चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने पत्नीसे सारा हाल कहा। वह बेचारी भी सोच करने लगी। पर कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। दोनों कातर होकर भगवान्‌को पुकारने लगे।

भगवान् भक्तवत्सल हैं, उन्होंने भक्त शरद ठाकुरकी पुकार सुन ली। कुछ ही दिनों बाद घूमते-फिरते शिवेन्द्र स्वामी नामक एक महात्मा बलाई गाँवमें पधारे और चातुर्मासका व्रत लेकर वहीं नदीके तटपर एक पेड़के नीचे ठहर गये।

महात्मा पहुँचे हुए थे। गाँवके नर-नारी दर्शनके लिये आने लगे। वे दिनभर मौन रहकर ध्यान करते। सिर्फ एक घंटा मौन खोलते। महात्माजीकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। आसपासके गाँवोंसे भी दर्शनार्थी आने लगे। शरद ठाकुर भी जाते। एक दिन शरद महात्माजीको नवीनका हाल सुनाकर रोने लगे। महात्माजीने कहा—'घबराओ नहीं। उसके संस्कार बड़े अच्छे हैं, वह बड़ा भक्त होगा। एक बार उसे मेरे पास ले आओ।' शरदको बड़ा आश्वासन मिला।

नवीनको समझा-बुझाकर शरद ठाकुर उसे महात्माजीके पास लाये। महात्माजीने उसके मस्तक और पीठपर हाथ फेरकर कहा—'बेटा! मेरी बात मानोगे न? नवीनने मन्त्र-मुग्धकी तरह कहा—'हाँ भगवन्! अवश्य मानूँगा।'

'तो आजसे यहाँ रोज आया करो।'

'आऊँगा—भगवन्!'

'यहीं रहना होगा।'

'रहूँगा—भगवन्!'

'पर मेरे पास रहनेवालेको मेरी शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं।'

'करूँगा—भगवन्! बतलाइये क्या शर्तें हैं?'

'शराब कभी न पीना, झूठ न बोलना, सूर्योदयसे पहले उठना,

संध्या करना, अग्निहोत्र करना, माँ कात्यायनीकी पूजा करना, उनके '**ह्रीं श्रीं कात्यायन्यै स्वाहा**' मन्त्रका नित्य विधिपूर्वक जप करना, हविष्यान्न खाना—बस, यही आठ शर्तें हैं।' 'जो आज्ञा, मैं पूजा और अग्निहोत्रका सामान ले आऊँ?' 'सामान सब मैं मँगवा दूँगा' महात्माजीने नवीनसे ऐसा कहकर शरद ठाकुरको सामान लानेके लिये संकेत किया। उसी समय सारा सामान आ गया। नवीन वहीं रहने लगा। उसी क्षणसे उसका कायापलट हो गया। भगवती कात्यायनीका पूजन-जप, नियमित संयमपूर्ण जीवन और महापुरुषका सत्संग। भगवान्‌की बड़ी कृपासे नवीनचन्द्रको सारी सामग्री सहज ही मिल गयी। कुछ ही दिनोंमें उसका चेहरा शुक्लपक्षके नवीन चन्द्रकी भाँति चमकने लगा।

एक दिन नवीनने कहा—'भगवन्! आपने इतनी दया की है तो एक और कीजिये। मुझे संन्यासकी दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिये।' महात्माजी बोले—'बेटा! जगदम्बाकी जब जो इच्छा होगी, वही होगा। वे चाहेंगी तो तुम्हें सम्यक् प्रकारसे भोगोंका त्यागी बनाकर अपनी सेवक-श्रेणीमें ले लेंगी। तुम तो बस—बेटा! उन्हींके हो रहो। देखो—तुम्हें पता नहीं है। यहाँके सत्संगसे तुम्हारे दोष, तुम्हारी भोगवासनाएँ दब गयी हैं, क्षीण भी हुई हैं, परंतु अभी उनका पूरा नाश नहीं हुआ है। जगदम्बाकी कृपासे जब सच्चे वैराग्यकी आग जलेगी तब अपने-आप ही सारी भोगवासनाका कूड़ा जल जायगा। बेटा! एक म्यानमें दो तलवार नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार भोगवासनाके रहते वैराग्य नहीं हो पाता और जबतक वैराग्य नहीं होता तबतक त्यागके स्वाँगका क्या मूल्य है? भोगोंसे उत्पन्न दुःखोंसे घबराकर कभी-कभी जो विरक्ति होती है, वह असली वैराग्य नहीं है। न आवेशमें आकर घर छोड़नेका नाम ही सच्चा वैराग्य है। धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, मान-बड़ाई आदि भोगोंकी वासना मनमें छिपी

रहती है और समय-समयपर बहुत बड़े-बड़े प्रलोभन सामने रखकर साधकको डिगानेकी चेष्टा करती है। यह तो सत्य है ही—भोग हर हालतमें दुःख ही उपजाते हैं। परंतु माँ जगदम्बाकी कृपा बिना भोगवासनासे छुटकारा मिलना बहुत ही कठिन है। तुम माँको प्रसन्न करो। माँ प्रसन्न होकर जब जो आज्ञा दें, वही करो। माँ तो प्रसन्न ही हैं। पुत्र कितना ही कुपूत हो, माँका स्नेहभरा हृदय कभी नहीं सूखता। माँकी गोद तो संतानके लिये सदा ही खाली है। बस, जब तुम माँकी—एकमात्र माँकी गोदमें बैठना चाहोगे, तभी माँ प्रत्यक्ष होकर तुम्हारे सामने आकर तुम्हें अपनी गोदमें उठा लेंगी। हृदयसे चिपटा लेंगी। बेटा! धैर्य रखो, माँकी महिमा जानकर माँ-माँ पुकारते रहो। तुम्हारा कल्याण होगा। माँके और बच्चेके बीचमें तीसरेकी जरूरत नहीं है; वे तुम्हारी माँ, तुम उनके बच्चे!'

महात्माजीके वचन सुनकर नवीनका हृदय भर आया, उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। वह अनन्यभावसे जगदम्बाकी सेवा करने लगा! शरद ठाकुर और उनकी पत्नी—दोनों ही पुत्रके परिवर्तनपर बड़े प्रसन्न थे।

भजन करते-करते नवीनका अन्तःकरण पवित्र हो गया। वे भजनकी मूर्ति बन गये। माँका ध्यान करते-करते कभी रोते, कभी हँसते, कभी नाचते और कभी माँ-माँ पुकारकर इधर-उधर दौड़ने लगते। बैठ जाते तो अखण्ड समाधि ही लग जाती।

एक दिन प्रातःकाल जगदम्बा कात्यायनी स्वयं प्रकट हो गयीं। नवीनने आँखें खोलकर देखा—बड़ा शुभ्र प्रकाश है। माता मृगराजपर सवार हैं, प्रसन्न मुखमण्डल है, सुन्दर तीन नेत्र हैं, गलेमें सुन्दर हार हैं, भुजाओंमें रत्नोंके बाजूबन्द और कड़े हैं। सुन्दर जटापर मनोहर मुकुट है। चरणोंमें नूपुर बज रहे हैं। दिव्य रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हैं। मस्तकपर अर्धचन्द्र शोभा पा रहा है। करोड़ों चन्द्रमाओंके

समान देहकी सुशीतल समुज्ज्वल प्रभा है। दस हाथ हैं—जिनमें खड्ग, खेटक, वज्र, त्रिशूल, बाण, धनुष, पाश, शंख, घण्टा और पद्म सुशोभित हैं। माँके वात्सल्यपूर्ण नेत्रोंसे मधुर स्नेहामृतकी धारा बह रही है। होठोंपर मीठी मुसकान है। मानो संतानको अभय करके अपनी गोदमें लेकर नित्यानन्द प्रदान करनेके लिये आँचल पसारे खड़ी हैं!

नवीन माताकी मुखमुद्रा देखकर निहाल हो गये। आनन्दके आँसू बहने लगे। शरीर पुलकित हो गया। वाणी रुक गयी। बहुत देर बाद माताकी प्रेरणासे धीरज आनेपर नवीनने माँका स्तवन किया। माताने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और मस्तकपर हाथ फेरकर कहा—'बेटा! तू धन्य हो गया। तेरे गुरुजी आज अदृश्य हो जायँगे। तू पूर्वजन्ममें मेरा भक्त था। गुरुजी तेरे पिता थे! वे मेरी कृपाको प्राप्त कर चुके। तू किसी प्रतिबन्धकवश जगत्‌में आया था। गुरुजीको मैंने ही भेजा था। अब तू मेरी कृपासे कृतकृत्य हो गया। मेरी आज्ञासे घर जाकर विवाह कर और जीवनमें मेरी सेवा करता हुआ अन्तमें मेरे सच्चिदानन्दधाममें प्रवेश कर जा। तेरी भावी पत्नी भी मेरी सेविका है। तू घरमें रहकर भी जलमें कमलकी भाँति असंग ही रहेगा।' इतना कहकर माता अन्तर्धान हो गयीं।

नवीनने देखा, गुरुजी भी अदृश्य हो गये हैं, नवीन माताके आज्ञानुसार घर चला आया और माता-पिताको सारी कथा कह सुनायी। उनके आनन्दका कोई ठिकाना न था, बड़े उत्साहके साथ तारा नामकी सुशीला कन्यासे नवीनचन्द्रका विवाह हुआ। तारा और नवीन दोनों मातृमन्त्रमें दीक्षित होकर जीवनभर माँका भजन करते रहे।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

भक्त सेठ रमणलाल

सेठ रमणलालका देश-विदेशमें कई जगह कारोबार था। बड़ी-बड़ी नावोंमें देशसे माल विदेश भेजा जाता था और विदेशसे यहाँ लाया जाता था। रमणलाल अत्यन्त साधुस्वभावके भक्त पुरुष थे। भगवान्‌में उनका अगाध विश्वास था। वे श्रीमद्भगवद्गीताके बड़े विश्वासी थे। नित्य बड़े आदरसे भगवद्गीताका मनन करते और भगवान्‌के आज्ञानुसार पवित्र निष्काम जीवन बिताते हुए भगवत्प्रीत्यर्थ ही अपने वर्णाश्रमका—धर्मानुसार व्यापार आदि कार्य करते थे। उनकी धर्मपत्नी चम्पाबाई भी बड़ी ही भक्तिमती थी। घरमें श्रीगोविन्द देवजीका विग्रह था और दोनों पति-पत्नी स्वयं बड़े भक्तिभावसे नियमित भगवान्‌का अर्चन-पूजन किया करते थे। दिनमें सेठ अपनी पैढ़ीपर जाते और लगभग छः घंटे काम-काज भलीभाँति सँभालकर घर लौट आते। चार घंटे शौच-स्नान, भोजन-पान और अतिथि-सत्कार आदिमें लगते, चार घंटे सोते। शेष दस घंटे भजन-पूजन, स्वाध्याय-जप और स्मरण-ध्यान आदिमें बीतते। बड़ी ही नियमित और निर्मल जीवनचर्या थी। उनके आदर्श सद्व्यवहारसे सैकड़ों मुनीम-गुमाश्ते और नौकर-चाकरोंकी तो बात क्या, दूर-दूरके लोग भी बड़े सन्तुष्ट थे। जो भी उनके सम्पर्कमें आता, वही उनके प्रेम और सत्कारपूर्ण हितभरे व्यवहारसे मुग्ध हो जाता। वे बड़े व्यवहार-कुशल और हिसाब-किताबके साफ थे; परंतु उनकी व्यवहार-कुशलतामें कहीं भी छल-कपट या परस्वत्वापहरणकी कल्पना भी नहीं थी। उनमें परहितपरायणता और विनयशीलता तो कूट-कूटकर भरी थी। वे किसीपर कभी गुस्सा तो होते ही नहीं थे। सदैव हँसमुख और विनय-विनम्र-नेत्र रहते थे।

एक बार रसोइयाने भूलसे हलवेमें शक्करकी जगह नमकका

पानी बनाकर डाल दिया और तरकारियोंमें नमककी जगह शक्कर डाल दी। वह अपनी पत्नीकी बीमारीके कारण रातभरका जगा हुआ था और पत्नीकी रुग्णताके कारण उसके मनमें चिन्ता भी थी। इसीसे भूल हो गयी। सेठ रमणलाल भोजन करने बैठे तो उन्हें हलवा, नमकीन और तरकारी मीठी, किंतु बिना नमककी मालूम हुई। उन्होंने रसोइयाके चेहरेकी ओर देखा। उसका चेहरा उदास था। सेठने हार्दिक सहानुभूतिके स्वरमें उससे पूछा—'महाराज! आज उदास कैसे हो?' लाभशंकर रसोइयाने जवाब दिया—'ब्राह्मणी बीमार है, इसीसे चेहरेपर कुछ मलिनता आ गयी होगी।' उसने रात जगनेकी बात नहीं कही। पर सेठ उसकी उनींदी आँखोंको देखकर ताड़ गये। उन्होंने कहा—'लाभशंकर! तुम खाकर जल्दी घर चले जाओ—ब्राह्मणी अकेली है, उसे सँभालो; यहाँ दूसरा आदमी काम कर लेगा। तुम भला आये ही क्यों? फिर भैया! तुम्हारे घरमें दूसरा कोई है भी तो नहीं। तुम रातभर जगे भी होओगे! मैं एक आदमी भेजता हूँ, वह बैठेगा, तुम कुछ देर आराम कर लेना।' रसोइयाको बड़ी सान्त्वना मिली। वह मन-ही-मन आशीर्वाद देता हुआ घर चला गया।

लाभशंकरके चले जानेपर सेठ रमणलालने अपनी पत्नी चम्पाबाईसे धीरेसे कहा—'देखो, बेचारा डरके मारे स्त्रीको बीमार छोड़कर कामपर आ गया। रातकी नींद थी और ब्राह्मणीकी चिन्ता थी। इससे उसने भूलसे हलवेमें नमक और तरकारियोंमें शक्कर डाल दी है। अगर इन चीजोंको घरके सब लोग नौकर-चाकर आदि खायेंगे तो बेचारे ब्राह्मणकी हँसी उड़ायेंगे और उसे भारी दुःख होगा। अतएव ये चीजें गोशालामें ले जाकर गायोंको खिला दो और जल्दीसे दूसरी बार हलवा-तरकारी बनवा लो, जिससे लाभशंकरकी भूलका किसीको पता भी न लगे।' चम्पाबाईने वैसा

ही किया। बात है बहुत छोटी, परंतु इससे सेठ रमणलालकी विशालहृदयता और सदाशयताका पता लगता है!

कुछ दिनों बाद एक दिन चम्पाबाईने हँसते-हँसते लाभ शंकरको उसकी उस दिनकी भूलकी बात बतला दी। वह बेचारा सुनकर सकबका गया। उसने सेठके पास जाकर क्षमा माँगी। सेठने प्यार करते हुए उससे कहा—'लाभशंकर! तुम्हारी जगह हम होते तो वैसी हालतमें हमसे तो कोई दूसरा काम ही नहीं बन पड़ता। तुमने इतनी सारी रसोई बना दी। नमक-शक्करमें जरा उलट-पुलट हो गयी तो इसमें अपराध क्या हो गया, जो क्षमा माँगते हो। तुम्हारी नीयत तो बुरी नहीं थी।' लाभशंकरका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। उसने विनयके साथ कहा—'सेठजी! मैं जानता हूँ, आप बड़े दयालु हैं, पर आपने मुझे भूल बतायी क्यों नहीं?' सेठ रमणलाल बोले—'भैया! उस दिन तुम पहलेसे ही दुःखी थे, तुम्हारी भूल बताकर मैं तुम्हारा दुःख ही तो बढ़ाता। फिर सच्ची बात तो यह है कि मुझसे कभी भूल न होती हो तो मैं तुम्हारी भूलकी चर्चा करूँ। जब मैं खुद भूल करता हूँ, अच्छी हालतमें भूल करता हूँ, तब तुमसे एक विशेष परिस्थितिमें बनी मामूली भूलकी चर्चा चलाकर नयी भूल क्यों करता। दूसरेकी भूलपर उसीको बुरा माननेका अधिकार हो सकता है, जिससे जीवनमें कभी भूल नहीं हुई हो!'

एक बार सेठ रमणलालकी कुछ मालसे भरी नावें समुद्रमें डूब गयीं। मल्लाह तो सब बच गये, परंतु मालका कुछ भी हिस्सा नहीं बच पाया। सेठको समाचार मिला तो उन्होंने निर्विकार चित्तसे कहा—'अवश्य ही यह कोई पापका पैसा था। नहीं तो, भगवान्‌के निर्भ्रान्त मंगलविधानमें नाव डूबनेका प्रसंग ही क्यों आता?' पीछे पता चला कि जहाँसे माल आ रहा था,

वहाँके कर्मचारियोंने पैसोंके लोभसे अनुचित कमायी की थी। सेठने कहा—'भगवान्‌ने बड़ा मंगल किया जो पापसे लदी नावें राहमें ही डूब गयीं। कहीं वह पैसा घरमें आ जाता तो पता नहीं, उससे हमलोगोंकी बुद्धि बिगड़नेपर क्या दशा होती।'

एक बार सेठ रमणलालकी किसी व्यापारकी शाखामें अनाजकी गोदामोंको लोगोंने लूट लिया। उनमें कई लाखका अनाज भरा था। इस खबरको सुनकर शहरके कुछ बन्धु-बान्धव सहानुभूति दिखाने और हाल पूछने सेठके पास सबेरे ही आये। सेठ उस समय गीताका पारायण कर रहे थे। उनके चेहरेपर जरा भी उद्वेगका चिह्न नहीं था। स्वाभाविक शान्ति और प्रसन्नता निखर रही थी। उन्होंने समागत लोगोंसे पूछा—'आज आपलोग इस समय घरपर कैसे पधारे? कोई मेरे योग्य खास सेवा हो तो आज्ञा कीजिये।' उन लोगोंने रमणलालके चेहरेपर कोई विकार न देखकर सोचा, 'शायद समाचार झूठा हो।' उन्होंने कहा—'हमलोगोंने सुना था कि आपकी किसी शाखामें भारी डाका पड़ गया है; परंतु बड़ा अच्छा हुआ जो वह अफवाह झूठी निकली। भगवान्‌ने बहुत अच्छा किया।' इसपर सेठ रमणलालने मुसकराते हुए कहा—'बात तो झूठी नहीं है, पर आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि भगवान्‌ने बड़ा अच्छा किया। सचमुच श्रीभगवान्‌ने इसमें मेरा कई तरहसे बड़ा उपकार किया है। भगवान्‌के मंगलमय मर्मको तो भगवान् ही जानें, पर मैंने इतना तो समझा है कि प्रथम तो उन्होंने मेरी परीक्षा की है कि धनके लुट जानेसे मुझको दुःख होता है या मैं उनके मंगलविधानका आनन्दके साथ स्वागत करता हूँ। दूसरे, उस प्रान्तमें इस समय अकालके लक्षण दिखलायी देने लगे थे। मेरा विचार था कि मैं वहाँके संगृहीत अनाजमेंसे कुछ हिस्सा अकाल-पीड़ित भाई-बहनोंकी सेवामें

समर्पण कर दूँ। उनके रूपमें भी तो मेरे भगवान् ही हैं। पर मैं देर कर रहा था और मेरे मनमें कुछ बचा रखनेका लोभ था, भगवान्‌की प्रेरणासे उन भगवत्स्वरूप लोगोंने स्वयं ही अपने-आप उस सारे संग्रहको बाँट लिया। मेरा काम हलका हो गया। तीसरे, यदि किसीने लोभवश ही कुछ लिया है, तो लिया ही है न? मैंने तो किसीका कुछ नहीं छीना है और चौथे, मेरा सद्भाव और भगवदाश्रयरूपी धर्म-धन तो पूरा-पूरा मेरे पास ही है। मैं समझता हूँ—'उसमें तो भगवत्कृपासे कुछ वृद्धि ही हुई है।'

सेठ रमणलालकी बात सुनकर लोग उनके पवित्र भावोंकी प्रशंसा और उनके आचरणपर आश्चर्य करते हुए लौट गये!

सेठ जब छप्पन वर्षके हुए, तब उन्होंने—पुत्र न होनेके कारण अपने दौहित्र छगनलालको बुलाकर घरका सारा भार और सारा धन सौंप दिया और स्वयं पत्नीसहित नर्मदा-तटपर जाकर त्यागपूर्ण साधु-जीवन बिताते हुए अखण्ड भजन करने लगे। लगभग सत्तर सालकी उम्र होनेपर पति-पत्नी दोनोंको भगवान् श्रीगोविन्ददेवजीने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। इसके बाद लगभग तीन साल बाद दोनों पूतात्मा पति-पत्नी एक ही दिन नश्वर शरीर छोड़कर नित्य भगवद्धामको सिधार गये।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'
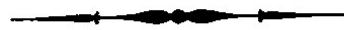
भक्त रामनारायण

भक्त लाला रामनारायणजीकी जन्मभूमि तो पंजाब थी, परंतु वे बहुत समयसे आकर बस गये थे। मोक्षदायिनी भगवान् शंकरकी काशीपुरीमें उनके साथ पंजाबके कई लोग और भी आये थे। रामनारायणजी भगवान् शंकरके अनन्य भक्त थे। प्रतिदिन बहुत तड़के ही गंगास्नान करके वे भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करते और फिर घर लौटकर पार्थिवपूजन, शिवसहस्रनामका पाठ और महामृत्युंजय मन्त्रका भक्ति-श्रद्धापूर्वक जाप करते थे। मध्याह्नतक उनका पूजा-पाठ चलता। उनकी पत्नी शारदा और पुत्र शम्भुशरण भी भगवान् शिवजीके बड़े भक्त थे। कल्याणकारी '**नमः शिवाय**' का अनवरत जप तो परिवारभरका स्वभाव ही बन गया था। आशुतोष भगवान् शंकरकी कृपासे रामनारायणजीका व्यापार चमका और वे थोड़े ही दिनोंमें सुख-समृद्धिसे सम्पन्न हो गये। कहते हैं—

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वे खाये बौरात हैं ये पाये बौराय॥

धतूरेसे स्वर्णमें सौगुना अधिक नशा है, मनुष्य धतूरेको तो खानेपर पागल होता है; परंतु सोना (धन) मिलते ही पागल हो जाता है। साधारणत: ऐसी नीति होनेपर भी श्रीशंकरजीकी कृपासे यहाँ सर्वथा विपरीत परिणाम हुआ। श्रीरामनारायणजीके ज्यों-ज्यों सुख-समृद्धि और धन-ऐश्वर्य बढ़ा, त्यों-ही-त्यों उनमें नम्रता, विनय, त्यागकी भावना और अन्यान्य दैवी सम्पत्तिके गुण बढ़ते गये। सत्पुरुषोंके पास आये हुए न्यायोपार्जित धनका सुकृत और सेवामें ही सदुपयोग हुआ करता है, इस सिद्धान्तके अनुसार रामनारायणजीका धन सत्कार्योंमें लगने लगा। इससे उनकी कीर्ति भी बढ़ी। यद्यपि उनके मनमें कीर्तिकी तनिक भी चाह नहीं थी, वे

उससे बहुत डरते थे। तथापि जहाँ चन्दन होता है, वहाँ सुगन्ध फैलती ही है। अतएव बिना चाहे भी उनके साधुस्वभाव, विनय और गुप्तदानके कारण उनका यशसौरभ सर्वत्र फैल गया।

पंजाबसे उनके साथ आये हुए लोगोंमें एक लाला दयालीराम थे। वे रामनारायणजीकी उन्नतिसे मन-ही-मन जला करते। यद्यपि रामनारायणजी हर तरहसे स्वाभाविक ही उनके साथ बड़ी उदारता और प्रीतिका व्यवहार करते, परंतु लाला दयालीरामकी द्वेषबुद्धि बढ़ती गयी। श्रीरामनारायणजीको इस बातका कुछ भी पता नहीं था। परंतु दबी आग कबतक रह सकती है। ईंधन और हवाका झोंका पाते ही धधक उठती है। इसी प्रकार मौका पाते ही लाला दयालीरामकी द्वेषाग्नि भड़क उठी। अब तो वे खुल्लमखुल्ला रामनारायणजीसे वैर करने लगे और भाँति-भाँतिसे उन्हें सताने, परेशान करने और हानि पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे। गालियाँ देने, गुंडोंसे पिटवाने, आग लगा देने और व्यापारमें नुकसान पहुँचाने आदिके रूपमें वैर-सम्पादनके भाँति-भाँतिके प्रयत्न दयालीरामकी ओरसे चलने लगे।

एक दिन रामनारायणजी गंगास्नान करके आ रहे थे। दयालीरामने अचानक स्वयं आकर उनके दो जूते लगा दिये। रामनारायणजी हँसते हुए चले गये। परंतु उन्हें अपने साथी दयालीरामकी इस गिरी हुई हालतपर बड़ी दया आयी। वे उनकी दुःस्थितिके कारण दुःखी हो गये। अपने अपमान और जूतोंकी मारके कारण नहीं, परंतु दयालीरामकी मानसिक दुर्भावनाके कारण वे चिन्तातुर हो गये। उन्होंने सोचा, कैसे दयालीरामजीकी वृत्ति ठीक हो। उन्होंने मन-ही-मन उनसे विशेष प्रेम करनेका संकल्प किया और संकल्पानुसार कार्य भी शुरू कर दिया। यह नियम है कि जब हम किसीके सम्बन्धमें अपने मनमें द्वेष और वैरके विचार रखते हैं, तब वे हमारे विचाररूपी राक्षस उसकी ओर जाते हैं और उसके मनमें भी द्वेष

और वैरके विचार उत्पन्न करके उनको फिर अपनी ओर खींचते हैं। स्वार्थ, क्रोध, हिंसा, मद और लोभ आदिके विचारोंका भी ऐसा ही असर होता है। इस प्रकार परस्परमें अशुभ विचार बढ़ते रहकर तमाम वातावरणको और तमाम जीवनको अशुभ बना देते हैं। इसके बदलेमें यदि किसीके प्रति प्रेमके विचारोंका पोषण हो तो वे भी वहाँतक पहुँचते हैं और उसके मनमें उभड़े हुए द्वेषको दबाकर प्रेमके भाव पैदा करते हैं। यों यदि बार-बार प्रेमके विचारोंको बढ़ा-बढ़ाकर भेजा जाय तो अन्तमें उसका द्वेष मिट जाता है और वह भी प्रेम करने लगता है। प्रेम प्रेमका और द्वेष द्वेषका जनक है। लाला दयालीरामके मनमें वैर था, परंतु रामनारायणजीके मनमें अत्यन्त सुदृढ़ और महान् प्रेम भरा था। अतएव दयालीरामके द्वेषके विचारोंका रामनारायणजीके प्रेमके बढ़े हुए विचारोंपर कोई असर नहीं हुआ, बल्कि वे विचार प्रेमके प्रबल विचारोंसे दबने लगे और उत्तरोत्तर शक्ति क्षीण होकर लौटने लगे। साथ ही रामनारायणजीके बढ़े हुए निर्मल और प्रबल प्रेमके विचार लगातार वहाँ पहुँचने लगे और उनके हृदयके अशुभ भावोंको क्रमशः मिटाने लगे। अब लाला दयालीरामको अपने कियेपर बीच-बीचमें पश्चात्ताप भी होने लगा।

इधर लाला रामनारायणजीको धैर्य नहीं हुआ, वे शीघ्र-से-शीघ्र दयालीरामको शुभ स्वरूपमें देखनेके लिये आतुर हो गये। अतएव उन्होंने एक दिन रातको एकान्तमें आर्त होकर भगवान् आशुतोषसे करुण प्रार्थना की—

'मेरे स्वामिन्! मुझे अपने साथी लाला दयालीरामजीके इस पतनका बड़ा ही दुःख है। आप अन्तर्यामी हैं, यदि मेरे मनमें उनके प्रति जरा भी द्वेष रहा हो या अब भी कहीं हो तो मुझे उसका कड़ा दण्ड दीजिये, परंतु उनके मनमें शान्ति, सौहार्द और प्रेम पैदा कर दीजिये। मेरे नरकाग्निकी पीड़ा भोगनेसे भी यदि उनका चित्त शुद्ध

होता हो तो मेरे भगवन्! शीघ्र-से-शीघ्र इसकी व्यवस्था कीजिये। आपके दिये हुए धन-ऐश्वर्य और मान-कीर्तिसे यदि उनके मनमें दुःख होता हो तो प्रभो! आपकी इन चीजोंको आप तुरंत वापस ले लीजिये। मुझे तुरंत राहका भिखारी और सर्वथा दीन-हीन अपमानित बना दीजिये। ऐसा धन-वैभव और यश-सम्मान किस कामका, जो किसी भी प्राणीके दुःखका कारण हो। फिर भगवन्! जहाँतक, मेरे मनका मुझे पता है, मैंने तो कभी स्वामीसे धन-सम्मानके लिये प्रार्थना भी नहीं की थी। मैं तो स्वामीकी दी हुई वस्तुओंको नित्य स्वामीकी ही सम्पत्ति मानकर स्वामीके आज्ञानुसार स्वामीकी सेवामें ही लगानेका प्रयत्न करता रहा हूँ। परंतु ऐसा कहना भी मेरा अभिमान ही है। मैं क्या प्रयत्न करता हूँ। स्वामी ही तो सब कुछ करा रहे हैं। इस समय भी मैं जो कुछ कह रहा हूँ, इसमें भी तो दयामय स्वामीकी ही प्रेरणा है। प्रभो! प्रभो! मैं दम्भ करता हूँ, मेरे मनमें अवश्य ही कोई दोषबुद्धि, पापभावना रही होगी। मेरा मन सचमुच ही किसी छिपे अपराधसे भरा होगा, तभी तो मेरे कारण मेरे साथीको इतना उद्वेग हो रहा है। मैं ही तो उनके जीवनकी अशान्ति और व्यथाका कारण हूँ। मैं यह भी कैसे कह सकता हूँ कि मेरे मनमें धन-सम्मानकी कामना नहीं थी और मैं इसका केवल स्वामीकी सेवामें ही सदुपयोग कर रहा हूँ। प्रभो! अपना पाप मुझे दीख नहीं रहा है। यह मेरा और भी अपराध है। मेरे औढरदानी महादेव! मुझपर आपकी कितनी कृपा है। मैं क्या कहूँ? स्वामीकी कृपा और मेरी नालायकीमें मानो होड़ लग गयी है। अब जैसा स्वामी उचित समझें, वैसा ही हो। परंतु मेरा मन बार-बार इस दुःखसे रो रहा है कि कैसे दयालीरामजीकी अशान्ति मिटे·······।'

हृदयकी सच्ची प्रार्थना निश्चय ही सफल होती है। फिर भगवान् शंकर तो आशुतोष ठहरे। प्रार्थना करते-करते ही रामनारायणजी

समाधिस्थ हो गये। उन्होंने देखा—भगवान् वृषभवाहन सामने उपस्थित हैं। बड़ी ही उज्ज्वल कर्पूरधवल कान्ति है, सिरपर पिंगल जटाजूट है। गलेमें वासुकि शोभा पा रहे हैं। एक हाथमें त्रिशूल, दूसरेमें डमरू, तीसरेमें रुद्राक्षकी माला है और चौथे हाथसे अभयदान दे रहे हैं। कटिमें रीछकी छाल पहने हैं। विशाल नेत्रोंसे मानो कृपासुधाकी वर्षा हो रही है। होठोंपर मुसकान है। देवदेव श्रीशंकरजीके दर्शन पाकर लाला श्रीरामनारायणजी कृतार्थ हो गये। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे, शरीर रोमांचित हो गया, आनन्दातिरेकसे वाणी बंद हो गयी। भगवान्‌ने उनके मस्तकपर अभयहस्तारविन्द रखा और कहा—'रामनारायण! तेरी श्रद्धा, भक्ति और निष्काम सेवाने मुझको अपने वशमें कर लिया है। यह दयालीराम पूर्वजन्ममें पिशाच था, इसके पहले जन्ममें वह दाक्षिणात्यमें ब्राह्मण था और तू वहींपर एक व्यापारी था। तेरी बुद्धि उस समय भी श्रेष्ठ थी। वह ब्राह्मण होनेपर भी कुसंगमें पड़कर मद्य-मांसका सेवन करता था और डाके डालकर धन कमाया करता था। उसमें बड़ी क्रूरता आ गयी थी। एक दिन उसने तेरे घरमें डाका डाला। तैंने उसके साथ उस समय भी बड़ा सद्‌व्यवहार किया और मनमाँगा धन देनेके बाद उसे मेरी भक्ति और '**नमः शिवाय**' मन्त्र-जाप करनेका उपदेश दिया। तेरे सद्‌व्यवहारका उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह मेरी पूजा करने लगा। एक बार रामेश्वरमें जाकर उसने मुझपर जल और बिल्वपत्र चढ़ाये थे। अपने पापोंके कारण वह दूसरी योनिमें पिशाच हुआ, परंतु तेरे संग तथा मेरी पूजाके फलस्वरूप वह योनि दस ही वर्षोंमें छूट गयी और उसने पुनः क्षत्रिय-कुलमें जन्म धारण किया। पिछले मानवशरीरमें उसका जीवन द्वेष, हिंसा, क्रोध और वैरकी भावनाओंका घर बना हुआ था, निरीहोंको सताना और भला करनेवालोंका भी बुरा करना उसका स्वभाव बन गया था। उन्हीं संस्कारोंके कारण उसने इस जन्ममें भी

तुझसे वैर-विरोध किया। परंतु तेरा हृदय सर्वथा निर्वैर तथा पवित्र प्रेमसे परिपूर्ण होनेके कारण उसके वैरने तुझपर तो कोई असर किया ही नहीं, प्रत्युत तेरे प्रेमसे उसका हृदय क्रमशः पवित्र होता गया। आज तो तेरी प्रार्थनासे वह सर्वथा पवित्र हो गया है। तुझे धन्य है, जो अपनी सद्भावनासे तू असतोंको सत् बना रहा है। मैं तुझपर बहुत ही प्रसन्न हूँ। मैं जानता हूँ तेरी धन-सम्मानमें जरा भी आसक्ति नहीं है। इसीसे तो उनके द्वारा मेरी आदर्श सेवा हो रही है। आसक्तिमान् पुरुषके धनसे मेरी (भगवान्‌की) सेवा नहीं बन सकती। तू सुख-शान्तिपूर्वक यहाँका कर्तव्य पूरा करके मेरे दिव्यलोकमें जायगा। निश्चिन्त रहकर मेरा भजन करता रह।'

भगवान् श्रीशंकरजी इतना कहकर ज्यों ही अन्तर्धान हुए, त्यों ही लाला रामनारायणजीकी समाधि टूटी। उन्होंने देखा—दयालीराम चरणोंमें पड़े रो रहे हैं। रामनारायणजीने उनको भगवान् शंकरका कृपापात्र समझकर उठा लिया। दयालीराम चरण छोड़ना नहीं चाहते थे। बार-बार अपनी करतूतोंका वर्णन करते हुए कातरकण्ठसे रो-रोकर क्षमा माँग रहे थे। उनको सच्चा पश्चात्ताप था। भगवान् शंकरजीकी कृपा, रामनारायणजीके सद्भाव और सच्चे पश्चात्तापकी आगने उनके समस्त पाप और पापबीजोंको जला दिया। श्रीरामनारायणजीने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और बहुत तरहसे सान्त्वना देकर तथा श्रीशंकरजीकी भक्तिका उपदेश देकर विदा किया।

श्रीदयालीरामके मनमें पूर्वजन्मकी स्मृति आ गयी। वे '**नमः शिवाय**' मन्त्रका जाप तथा भक्तिपूर्वक श्रीशंकरजीकी उपासनामें लग गये। रामनारायणजीके साथ उनका प्रेम अटूट हो गया। दोनों साथी भगवान् श्रीविश्वनाथकी सेवामें जीवन समर्पण करके कृतकृत्य हो गये।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

भक्त स्वामी रामअवधदास

लगभग सौ वर्ष पहलेकी बात है। भगवान् श्रीराघवेन्द्रके परम भक्त क्षेत्रसंन्यासी स्वामी रामअवधदासजी वैरागी साधु थे। बरसोंसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी राजधानी अयोध्यापुरीमें रहते थे। अहर्निश श्रीसीताराम-नामका कीर्तन करना उनका सहज स्वभाव हो गया था। रातको कठिनतासे दो घंटे सोते। सरयूजीके तीरपर एक पेड़के नीचे रहते। धूनी रात-दिन जलती। बरसातकी मौसममें भी कोई छाया नहीं करते। आश्चर्य तो यह कि मूसलधार वर्षामें भी उनकी धूनी ठंडी नहीं होती। जब देखो, तभी स्वामीजीके मुखारविन्दसे बड़े मधुर स्वरमें सीतारामकी ध्वनि सुनायी पड़ती। आसपासके सभी मनुष्य—जीव-जन्तुतक सीतारामध्वनि करना सीख गये थे। वहाँके पक्षियोंकी बोलीमें सीतारामकी ध्वनि सुनायी पड़ती, वहाँके कुत्ते-बिल्लीकी बोलीमें सीतारामका स्वर आता, वहाँके वृक्षोंकी खड़खड़ाहटमें सीताराम-नाम सुनायी देता और वहाँकी पवित्र सरयूधारा सीतारामका गान करती। तमाम वातावरण सीताराममय हो गया था!

स्वामीजी कभी-कभी सत्संग भी करते, कोई खास अधिकारी आनेपर उस समय वे जिन तर्क-युक्तियों और शास्त्रप्रमाणोंको अपने अनुभवके समर्थनमें रखते, उनसे पता लगता कि वे षड्दर्शनके बहुत बड़े पण्डित हैं, परंतु इस समय सब कुछ छोड़कर केवल भजनमें लगे हैं। सत्संगमें भी वे भजनका ही उपदेश करते और कहते कि मनुष्य और कर ही क्या सकता है? भगवान्ने कृपा करके जीभ दी है; इससे उनका नाम रटता रहे तो बस, इसीसे प्रभु कृपा करके उसे अपने आश्रयमें ले लेते हैं।

स्वामीजी वैष्णव साधु थे, पर किसी भी सम्प्रदाय और मतसे उनका विरोध नहीं था। वे सभीको अपने ही रामजीके विभिन्न स्वरूपोंके उपासक मानकर सभीसे प्रेम करते। खण्डन तो कभी किसीका करते ही नहीं। मधुर मुसकान उनके होठोंपर सदा खेलती रहती। वृद्ध होनेपर भी उनके चेहरेपर जो तेज छाया रहता, उसे देखकर लोग चकित हो जाते।

उन्होंने एक बार अपने श्रीमुखसे अपने पूर्वजीवनका कुछ वृत्तान्त एक सज्जनको सुनाया था। उन्होंने श्रीअयोध्याजीके एक संतसे उसको इस प्रकार कहा था। स्वामी रामअवधदासजी जौनपुरके समीपके ब्राह्मण थे। इनका नाम था—रामलगन। पिताके इकलौते पुत्र थे। माता बड़ी साध्वी और भक्तिमती थी। माताने बचपनसे ही इन्हें सीतारामका कीर्तन सिखाया था और प्रतिदिन वह इन्हें भगवान्के चरित्रोंकी मधुर कथा सुनाया करती थी। एक बार जब ये आठ वर्षके थे, तब रातको एक दिन कुछ डाकू इनके घरमें आ पहुँचे। इनके पिता पण्डित सत्यनारायणजी काशीमें पढ़े हुए विद्वान् थे। पुरोहितीका काम था। सम्पन्न घर था। जिस दिन डाकू आये, उस दिन इनके पिता घरपर नहीं थे। किसी यजमानके घर विवाहमें गये हुए थे। घरपर इनकी माँ थीं और ये थे। दोनों माता-पुत्र घरके अंदर आँगनमें सो रहे थे। गरमीके दिन थे, इसलिये सब किंवाड़ खुले थे। एक ओर गौएँ खुली खड़ी थीं। जिस समय डाकू आये, उस समय इनकी माँ इनको हनूमान्जीके द्वारा लंका-दहनकी कथा सुना रही थी। इसी समय लगभग पंद्रह-सोलह डाकू सशस्त्र घरमें घुस आये। उन्हें देखकर इनकी माँ डर गयीं, पर इन्होंने कहा—'माँ! तू डर क्यों गयी? देख, अभी हनूमान्जी लंका जला रहे हैं। उनको पुकारती क्यों नहीं? वे तेरे पुकारते ही हमारी मददको आवेंगे।' इन्होंने

बिलकुल निडर होकर यह बात कही। परंतु माँ तो काँप रही थी। उसे इस बातका विश्वास नहीं था कि सचमुच श्रीहनूमान्‌जी हमारी पुकारसे आ जायँगे। जब माँ कुछ नहीं बोली, तब इन्होंने स्वयं पुकारकर कहा—'हनूमान्‌जी! ओ हनूमान्‌जी!! हमारे घरमें ये कौन लोग लाठी ले-लेकर आ गये हैं! मेरी माँ डर रही है। आओ, जल्दी आओ; लंका पीछे जलाना।' डाकू घरमें घुसे ही थे कि क्षणोंमें यह बात हुई। इतनेमें ही सबने देखा सचमुच एक बहुत बड़ा बंदर कूदता-फाँदता आ रहा है; डाकू उसकी ओर लाठी तान ही रहे थे कि उसने आकर दो-तीन डाकुओंके तो ऐसी चपत लगायी कि वे गिर पड़े। डाकुओंका सरदार आगे बढ़ा तो उसे गिराकर उसकी दाढ़ी पकड़कर इतनी जोरसे खींची कि वह चीख मारकर बेहोश हो गया। डाकुओंकी लाठियाँ तनी ही गिर पड़ीं। बंदरपर एक भी लाठी नहीं लगी। डाकुओंके शोरगुलसे आसपासके लोग दौड़कर आ गये। डाकू भागे। सरदार अभी बेहोश था, उसे तीन-चार डाकुओंने कंधेपर उठाया और भाग निकले। बालक रामलगनजी और उसकी माँ बड़े आश्चर्यसे इस दृश्यको देख रहे थे। अड़ोसी-पड़ोसियोंके आते ही बंदर जिधरसे आया था, उधरको ही कूदकर लापता हो गया। रामलगन हँसकर कह रहा था—'देखा नहीं माँ! तूने, हनूमान्‌जी मेरी आवाज सुनते ही आ गये और बदमाशोंको मार भगाया।' माँके भी आश्चर्य और हर्षका पार नहीं था। गाँववालोंने यह घटना सुनी तो सब-के-सब आश्चर्यमें डूब गये। रामलगनकी माँने बताया कि इतना बड़ा और ऐसा बलवान् बंदर उसने जीवनमें कभी नहीं देखा था।

दो-तीन दिनोंके बाद पण्डित सत्यनारायणजी घर लौटे और उन्होंने जब यह बात सुनी तो उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। डाकू घरसे

चले गये, यह आनन्द तो था ही; सबसे बड़ा आनन्द तो उन्हें इस बातसे हुआ कि साक्षात् श्रीहनूमान्‌जीने पधारकर घरको पवित्र किया और ब्राह्मणी तथा बच्चेको बचा लिया। वे भगवान्‌में श्रद्धा तो रखते ही थे, अब उनकी भक्ति और भी बढ़ गयी। उन्होंने यजमानोंके यहाँ आना-जाना प्रायः बंद कर दिया और वे दिनभर भजन-साधनमें रहने लगे। बालक रामलगनको व्याकरण और कर्मकाण्ड पढ़ानेका काम उन्हींके गाँवके पण्डित विनायकजीके जिम्मे था। प्रातःकाल तीन-चार घंटे पढ़ते। बाकी समय माता-पिताके साथ वे भी भगवान्‌का भजन करते। भजनमें इनका चित्त रमने लगा। जब इनकी उम्र बारह वर्षकी हुई, तब तो ये घंटों भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमें बैठे रहने लगे। उस समय इनकी समाधि-सी लग जाती। नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बहती। बाह्यज्ञान नहीं रहता। समाधि टूटनेपर ये माता-पिताको बतलाते कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीजनकनन्दिनीजी तथा लखनलालजीके साथ यहाँ बहुमूल्य राजसिंहासनपर विराज रहे थे। बालककी इस स्थितिसे भाग्यवान् माता-पिताको बड़ा सुख होता। वे आजकलके माता-पिताकी तरह नहीं थे, जो अपने पुत्रोंको जान-बूझकर विषयोंमें लगाते हैं और धन कमानेके लिये भाँति-भाँतिके पापाचरणकी शिक्षा देकर उनके जीवनको बिगाड़ते हैं। वे सच्चे हितैषी थे अपने पुत्रके। पुत्रको जब इस प्रकार भगवान्‌के प्रेम और उनके ध्यानमें मस्त देखते तो उन्हें बड़ा आनन्द मिलता। वे अपनेको बड़ा सौभाग्यशाली समझते।

असलमें है भी ऐसी ही बात। श्रीसुमित्राजी अपने भाग्यवान् रामभक्त पुत्र लक्ष्मणजीसे कहती हैं—

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाँड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

× × ×

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

श्रीलक्ष्मणजीके वनगमनको अपना सौभाग्य समझकर माता पुत्रपर बलिहारी जाती हैं और अपनी कोखकी सराहना करती हुई श्रीसीताराम-चरणकमलोंके 'सहज सनेह' को ही समस्त सुकृतोंका एकमात्र महान् फल बतलाती हैं। असलमें वे ही माता-पिता धन्य हैं, जिनकी सन्तान भगवान्‌का भक्त हो और जो अपनी संतानको भगवान्‌की सेवामें समर्पण कर सकें। श्रीगोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटैं, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

रामलगनजीके पिता-माता सच्चे पुत्रस्नेही थे, वे अपने बालकको नरकोंमें न जाने देकर भगवान्‌के परमधामका यात्री बनानेमें ही अपना सच्चा कर्तव्य-पालन समझते थे; इसलिये उन्होंने पुत्रकी भक्ति देखकर सुख माना तथा उसे और भी उत्साह दिलाया। गाँवके तथा सम्बन्धके लोग जब रामलगनके विवाहके लिये कहते, तब माता-पिता उन्हें हँसकर उत्तर देते 'यह रामलगन हमारा पुत्र नहीं है, यह तो प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका है;

विवाह करना न करना उन्हींके अधिकारमें है। हम कुछ नहीं जानते!' उनकी ऐसी बातोंको सुनकर कुछ लोग चिढ़ते, कुछ प्रसन्न होते और कुछ उनकी मूर्खता समझते। जैसी जिसकी भावना होती, वह वैसी ही आलोचना करता।

रामलगनजीकी उम्र ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, त्यों-ही-त्यों उनका भगवत्प्रेम भी बढ़ने लगा। एक बार रामनवमीके मेलेपर रामलगनजीने श्रीअयोध्याजी जानेकी इच्छा प्रकट की। पण्डित सत्यनारायणजी और उनकी पत्नीने सोचा—'अब श्रीअवधमें ही रहा जाय तो सब तरहसे अच्छा है। शेष जीवन वहीं बीते। रामलगन भी वहीं पास रहे। इससे इसकी भी भक्ति बढ़ेगी और हमलोगोंका भी जीवन सुधरेगा।' ऐसा निश्चय करके पत्नीकी सलाहसे पण्डित सत्यनारायणजीने घरका सारा सामान तथा अधिकांश खेत-जमीन वगैरह दान कर दिया। इतनी-सी जमीन रखी, जिससे अन्न-वस्त्रका काम चलता रहे। एक कास्तकारको खेत दे दिया और हर साल उससे अमुक हिस्सेका अन्न देनेकी शर्त करके सब लोग श्रीअयोध्याजी चले गये। इस समय रामलगनजीकी अवस्था साढ़े पंद्रह वर्षकी थी। माता, पिता और पुत्र—तीनों अवधवासी होकर भगवान् अवधपतिका अनन्य भजन करने लगे। पूरे चार वर्षके बाद पिता-माताका देहान्त हो गया। दोनोंका एक ही दिन-ठीक रामनवमीके दिन शरीर छूटा। दोनों ही अन्तसमयतक सचेत थे और भजनमें निरत थे। शरीर छूटनेके कुछ ही मिनटों पहले दोनोंको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। श्रीरामलगनजी इस समय साढ़े उन्नीस सालके थे। माता-पिताकी श्राद्ध-क्रिया भलीभाँति सम्पन्न करनेके बाद इन्होंने अवधके एक भजनानन्दी संतसे दीक्षा ले ली। तबसे इनका नाम स्वामी रामअवधदासजी हुआ।

स्वामीजीमें उत्कट वैराग्य था। ये अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं रखते थे। योगक्षेमका निर्वाह श्रीसीतारामजी अपने-आप करते थे। इन्होंने न कोई कुटिया बनवायी, न चेला बनाया और न किसी अन्य आडम्बरमें रहे। दिन-रात कीर्तन करना और भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहना, यही इनका एकमात्र कार्य था।

इन्हें जीवनमें बहुत बार श्रीहनूमान्‌जीने प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके भी इनको सात बार दर्शन हुए। अन्तकालमें श्रीभगवान् राघवेन्द्रकी गोदमें सिर रखकर इन्होंने शरीरको छोड़ा। लोगोंका विश्वास था कि ये बहुत उच्च श्रेणीके भक्त हैं! ये बहुत ही गुप्त रूपसे रहा करते थे।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'
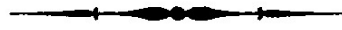
भक्त बालकराम

भक्त बालकरामजी राजनगर नामक गाँवमें रहते थे। छोटा-सा गाँव था। अधिकांश ब्राह्मणोंकी बस्ती थी। बालकरामजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। पिता-माता बड़े धर्मशील और सात्त्विक थे। बालकरामजीको छोटी उम्रमें छोड़कर ही दोनों परलोक सिधार गये थे। बालकरामजीको इनकी विधवा बूआने पाला था। वहीं गाँवमें एक पण्डितजीकी पाठशाला थी। बालकरामजीने उसीमें संस्कृतकी शिक्षा पायी थी। माता-पिता न होनेसे इनके विवाहकी किसीने चेष्टा न की। स्वयं ये जन्मसे ही विरक्त स्वभावके थे। इसलिये इनके मनमें कभी विवाह करनेकी कल्पना आयी ही नहीं। अतएव ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। शरीर बड़ा सुडौल, सुन्दर गौर वर्ण था, बड़े सधे हुए सजीले जवान थे। आँखोंमें अद्‌भुत तेज था। ये तड़के तीन बजे उठते और हाथ-मुँह धोकर भगवान् श्रीसीतारामजीके ध्यानमें बैठ जाते। दो घंटे ध्यानमें बिताकर उठकर शौच, स्नान-सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर फिर ध्यानमें बैठते, बारह बजे उठकर खानेको कुछ बना लेते और भगवान्‌को निवेदन करके प्रसादरूपमें पा लेते। इसके बाद चौबीस घंटे कुछ भी खानेसे काम नहीं। दिनभर कुटिया बंद रखते और अखण्ड भजन करते। शामको सूर्यास्तके लगभग दो घंटे पहले कुटियासे निकलते। उस समय गाँवके लोग जुट जाते। विविध परमार्थ चर्चा चलती! आप सबसे भजन करनेको कहते। बीच-बीचमें भागवतके श्लोक और मानसजीकी चौपाइयाँ सुना-सुनाकर लोगोंकी भजन-निष्ठा बढ़ाते। फिर बस शौच, स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर सन्ध्या होते ही किंवाड़ ढक लेते।

भजनमें बहुत बड़ी निष्ठा थी। आठों पहर इनके मुखसे

भगवान्‌का पवित्र नामोच्चारण होता रहता। ये इन दोहे-चौपाइयोंकी बार-बार आवृत्ति करके नाम-महिमा समझाते—

नाम भजो मन बस करो, यही बात है तंत।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिक ज्ञान-गिरंथ॥
नाम जपा सो सब किया, तीरथ बरत अनेक।
नाम आप भगवान् हैं, राखैं जनकी टेक॥
राम नाम जपते रहो, जब लगि घटमें प्रान।
कबहूँ दीन दयालके, भनक परैगी कान॥
नाम नाम सम नाम है, और सभी बेकाम।
नाम जपत सहजै मिलैं, साहेब सीताराम॥
राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उँजियार॥

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

एक बार आप सन्ध्यासे कुछ पहले कुटियासे बाहर अकेले बैठे हुए श्रीराम-नामका जप कर रहे थे; इतनेमें ही एक सुन्दरी स्त्रीने आकर चरणोंमें प्रणाम किया और कुछ फल-फूल सामने रखकर कहा—'महाराजजी! मैं अमुक गाँवके जमींदारकी पुत्रवधू हूँ। मेरे कोई सन्तान नहीं है, मैंने सुना है, आप बड़े महात्मा हैं, इसीलिये अकेली आपकी सेवामें आयी हूँ। आप आशीर्वाद दे दें तो मेरी गोद जरूर भर जायगी। आप दयालु हैं। मैं आपसे आँचल पसारकर भीख माँगती हूँ।'

बालकरामजीने बड़े संकोचसे कहा—'बहिन! तुम्हें अकेली घरसे बाहर निकलकर इस प्रकार किसी भी पुरुषके पास नहीं जाना चाहिये। पता नहीं, महात्माओंके वेशमें कितने स्वार्थी लोग घूमते हैं। फिर बहिन! मेरे पास तो कोई भी सिद्धि नहीं है, न

कोई मन्त्रबल या तपोबल ही है, जिससे मैं तुम्हें आशीर्वाद दे सकूँ। मैं तो अकिंचन दीन ब्राह्मण हूँ। प्रभुके नामपर पेट भरता हूँ। मुझे इस बातसे बड़ी लज्जा होती है कि लोग मुझे भक्त या महात्मा मानते हैं। मैं तो महात्मा और भक्तोंकी चरणरज पानेका भी अधिकारी नहीं हूँ। बहिन! जाओ, रातको घरसे बाहर रहना ठीक नहीं। भगवान्‌का स्मरण करो, उन्हींसे प्रार्थना करो, वे जो उचित समझेंगे वही करेंगे, उसीसे तुम्हारा परम कल्याण होगा। इसमें जरा भी शंका न करो!'

बालकरामजीकी बात सुनकर उसे बड़ी निराशा हुई, परंतु बेचारी क्या करती। लौट चली। बालकरामजीने कहा—'तुम्हारा घर दो कोस दूर है, अँधेरा हो रहा है। सावधानीसे जाना। भगवान् मंगल करेंगे। कोई संकट आवे तो 'श्रीसीताराम-सीताराम' कहना।' जमींदार-वधू दो-चार खेत आगे बढ़ी थी कि उसके गहने देखकर चोरोंने उसे घेर लिया। चोर जब वह आयी थी, तभीसे इसी ताकमें थे। उसने अपनेको बड़े संकटमें देखा और विश्वास करके मन-ही-मन प्रार्थना करती हुई 'सीताराम-सीताराम' पुकारने लगी। इतनेमें ही उसने देखा, एक श्यामसुन्दर सशस्त्र नवयुवक दौड़ा आ रहा है और उसके पीछे-पीछे भक्त बालकरामजी दौड़ रहे हैं। देखते-ही-देखते नवयुवकने आकर चोरोंपर गहरी चोट की। चोर उसी क्षण प्राण लेकर चम्पत हो गये। जमींदार-वधूने देखा—श्यामसुन्दर नवयुवक और बालकरामजी दोनों ही नहीं दिखायी दे रहे हैं। उसने सोचा, सपना तो नहीं आ गया। पर राह चलतेमें सपना कैसा? वह आश्चर्यचकित हो रही। इतनेमें ही उसके घरके कुछ आदमी, जिनको वह बुला आयी थी, आ पहुँचे और वह उनके साथ घर लौट गयी।

परंतु बालकरामजीकी निःस्पृहता, शान्ति, सरलता, साधुता

और निरभिमानिताका तथा श्रीश्यामसुन्दरकी झाँकीका उसके मनपर बहुत ही सात्त्विक प्रभाव पड़ा। वह समझ गयी कि मुझे चोरोंसे बचानेवाले साक्षात् भगवान् श्रीराघवेन्द्र ही थे और यह सब उनके भक्त श्रीबालकरामजीकी कृपासे ही हुआ। हो न हो, आज मेरे लिये बड़ा ही दुर्दिन था, न मालूम कितनी अशुभ घटना घटनेवाली थी। पर मैं महात्माकी कुटियापर पहुँच गयी; जिससे मेरी अद्भुत प्रकारसे रक्षा हो गयी। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि उसके मनसे 'अब सन्तानकी कामना ही दूर हो गयी और उसके बदलेमें भगवान्के भजनकी कामना जाग उठी। उसका अन्त:करण क्षणोंके साधुसंगसे निर्विषय हो गया। उसने इसी बहाने भगवान्के दुर्लभ दर्शन भी पा लिये। साधुसंगसे क्या नहीं होता?'

उसने घर पहुँचकर अपना मन भजनमें लगाया और आगे चलकर वह बहुत ऊँची स्थितिमें पहुँच गयी। कहते हैं कि भगवान् श्रीराघवेन्द्रकी उसपर अपार कृपा हुई। फिर, वह जब चाहती, तभी उसे भगवान्के दुर्लभ दर्शन होते। भगवान्के साथ उसका नित्य सम्बन्ध हो गया।

भक्त बालकरामजीने यह बात किसीसे नहीं कही। पता नहीं उन्हें प्रभुकी इस लीलाका पता भी था या नहीं। जमींदार-वधूके द्वारा ही कुछ समय बाद लोगोंको इस चमत्कारका पता लगा था।

एक बार रामनवमीके अवसरपर भक्त बालकरामजीकी इच्छा श्रीअवधयात्रा करनेकी हुई। वे लोटा-डोर तथा झोला-माला लेकर निकल पड़े। राजनगर अयोध्यासे तीन सौ कोस था। रामनवमीमें कुल तीन दिन शेष रह गये थे। बालकरामजीकी रामनवमीको ही पहुँचकर भगवान्का मंगल जन्म महोत्सव देखनेकी प्रबल इच्छा थी; पर कोई उपाय था नहीं। उनको अपनेमें कोई चमत्कार या सिद्धि

कभी दीखी ही नहीं। उनका अवलम्बन तो था एकमात्र श्रीभगवान्‌का नामजप करना और उनकी रूप-सुधा-माधुरीका ध्यान-नेत्रोंसे अनवरत पान करना। राहमें संध्या हो गयी। वे एक तालाबके पास पहुँचे। तटपर एक बड़ा पुराना बरगदका पेड़ था। उन्होंने वहीं रात बितानेका विचार किया। तालाबमें स्नान-सन्ध्या करके वहीं ध्यान करने बैठ गये। कुछ ही क्षणोंमें वे भगवान्‌की रूपमाधुरीमें छक गये। उनकी समाधि लग गयी। प्रात:काल समाधि टूटी तो देखते हैं, श्रीअयोध्याजीमें मैया सरयूजीके तटपर पीपलके पेड़के नीचे बैठे हुए हैं और भगवान् कोसलेन्द्र सामने खड़े हँस रहे हैं। बालकरामजी मुग्ध हो गये। उनका शरीर प्रेमानन्दसे पुलकित हो गया। वाणी रुक गयी। आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बह चली। उसी भावमें मस्त हुए वे अवधेशके मन्दिरकी ओर चल पड़े। उन्होंने स्पष्ट देखा—श्रीकोसलेन्द्र उनके आगे-आगे चल रहे हैं और वे मानो खिंचे हुए बेबस उनके पीछे चले जा रहे हैं। मन्दिरमें पहुँचते ही कोसलेन्द्रका वह स्वरूप छिप गया। अब बालकरामजीको होश आया। मन्दिरमें जन्मोत्सवकी तैयारी हो रही थी। पुजारीको भगवान्‌ने स्वप्नमें पहले ही बालक-रामजीका परिचय दे दिया था। पुजारीजीने उनको पहचान लिया। अच्छी तरह आवभगत की; परंतु बालकरामजीका भाव-मद तो अभी उतरा नहीं था। वे उसी नशेमें चूर भगवान्‌के सामने नाचने लगे। भगवान् श्रीराम, भरतलालजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीकी मंगलमय प्राकट्यकी झाँकी उनके सामने थी। वे उसी भावमें निमग्न थे। लोगोंने देखा एकाएक उनका ब्रह्माण्ड फटा और उसमें रामकी ध्वनि हुई। शरीर निर्जीव होकर वहीं गिर पड़ा। उनकी क्या गति हुई होगी, इसका अनुमान तो सभी कर सकते हैं।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

दृढ़निश्चयी ब्राह्मणभक्त

कृष्णनगरके पास एक गाँवमें एक ब्राह्मण रहते थे। वे पुरोहितीका काम करते थे। एक दिन यजमानके यहाँ पूजा कराकर घर लौटते समय उन्होंने रास्तेमें देखा कि एक मालिन (सागवाली) एक ओर बैठी साग बेच रही है। भीड़ लगी है। कोई साग तुलवा रहा है तो कोई मोल कर रहा है। पण्डितजी रोज उसी रास्ते जाते और सागवालीको भी वहीं देखते! एक दिन किसी जान-पहचानके आदमीको साग खरीदते देखकर वे भी वहीं खड़े हो गये। उन्होंने देखा—सागवालीके पास एक पत्थरका बाट है, उसीसे वह पाँच सेरवालेको पाँच सेर और एक सेरवालेको एक सेर साग तौल रही है। एक ही बाट सब तौलोंमें समान काम देता है। पण्डितजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सागवालीसे पूछा—"तुम इस एक ही पत्थरके बाटसे कैसे सबको तौल देती हो। क्या सबका वजन ठीक उतरता है?" पण्डितजीके परिचित व्यक्तिने कहा—'हाँ, पण्डितजी! यह बड़े अचरजकी बात है। हमलोगोंने कई बार इससे लिये हुए सागको दूसरी जगह तौलकर आजमाया, पूरा वजन उतरा।' पण्डितजीने कुछ रुककर सागवालीसे कहा—'बेटी! यह पत्थर मुझे दोगी?' सागवाली बोली—"नहीं बाबाजी! तुम्हें नहीं दूँगी। मैंने बड़ी मुश्किलसे इसको पाया है। मेरे सेर-बटखरे खो जाते तो घर जानेपर माँ और बड़े भाई मुझे मारते। तीन वर्षकी बात है—मेरे बटखरे खो गये, मैं घर गयी तो बड़े भाईने मुझको मारा। मैं रोती-रोती घाटपर आकर बैठ गयी और मन-ही-मन भगवान्को पुकारने लगी। इतनेहीमें मेरे पैरके पास यह पत्थर लगा। मैंने इसको उठाकर ठाकुरजीसे कहा—'महाराज! मैं तौलना नहीं

जानती, आप ऐसी कृपा करें, जिससे इसीसे सारे तौल हो जायँ।' बस, तबसे मैं इसे रखती हूँ। अब मुझे अलग-अलग बटखरोंकी जरूरत नहीं होती। इसीसे सब काम निकल जाता है। बताओ तुम्हें कैसे दे दूँ?'' पण्डितजी बोले—'मैं तुम्हें बहुत-से रुपये दूँगा।' सागवालीने कहा—'कितने रुपये दोगे तुम? मुझे वृन्दावनका खर्च दे दोगे? सब लोग वृन्दावन गये हैं; मैं ही नहीं जा सकी हूँ।' ब्राह्मणने पूछा, 'कितने रुपयेमें तुम्हारा काम होगा?' सागवालीने कहा—'पूरे ३०० रुपये चाहिये।' ब्राह्मण बोले—'अच्छा बेटी! यह तो बताओ, तुम इस शिलाको रखती कहाँ हो?' सागवालीने कहा—'इसी टोकरीमें रखती हूँ बाबाजी! और कहाँ रखूँगी?'

ब्राह्मण घर लौट आये और चुपचाप बैठे रहे। ब्राह्मणीने पतिसे पूछा—'यों उदास-से क्यों बैठे हैं? देर जो हो गयी है।' ब्राह्मणने कहा—'आज मेरा मन खराब हो रहा है, मुझे तीन सौ रुपयेकी जरूरत है।' स्त्रीने कहा—'इसमें कौन-सी बात है? आपने ही तो मेरे गहने बनवाये थे। विशेष जरूरत है तो लीजिये, इन्हें ले जाइये, होना होगा तो फिर हो जायगा।' इतना कहकर ब्राह्मणीने गहने उतार दिये।

ब्राह्मणने गहने बेचकर रुपये इकट्ठे किये और दूसरे दिन सबेरे सागवालीके पास जाकर उसे रुपये गिना दिये और बदलेमें उस शिलाको ले लिया। गंगाजीपर जाकर उसको अच्छी तरह धोया और फिर नहा-धोकर वे घर लौट आये। इधर पीछेसे एक छोटा-सा सुकुमार बालक आकर ब्राह्मणीसे कह गया—'पण्डिताइनजी! तुम्हारे घर ठाकुरजी आ रहे हैं, घरको अच्छी तरह झाड़-बुहारकर ठीक करो। सरलहृदया ब्राह्मणीने घर साफ करके उसमें पूजाकी सामग्री सजा दी। ब्राह्मणने आकर देखा तो उन्हें अचरज हुआ। ब्राह्मणीसे

पूछनेपर उसने छोटे बालकके आकर कह जानेकी बात सुनायी। यह सुनकर पण्डितजीको और भी ताज्जुब हुआ। पण्डितजीने शिलाको सिंहासनपर पधराकर उसकी पूजा की। फिर उसे ऊपर आलेमें पधरा दिया।'

रातको सपनेमें भगवान्‌ने कहा—'तू मुझे जल्दी लौटा आ, नहीं तो तेरा भला नहीं होगा। सर्वनाश हो जायगा।' ब्राह्मणने कहा—'जो कुछ भी हो, मैं तुमको लौटाऊँगा नहीं।' ब्राह्मण घरमें जो कुछ भी पत्र-पुष्प मिलता, उसीसे पूजा करने लगे। दो-चार दिनों बाद स्वप्नमें फिर कहा—'मुझे फेंक आ, नहीं तो तेरा लड़का मर जायगा।' ब्राह्मणने कहा—'मर जाने दो, तुम्हें नहीं फेकूँगा।' महीना पूरा बीतने भी नहीं पाया था कि ब्राह्मणका एकमात्र पुत्र मर गया। कुछ दिन बाद फिर स्वप्न हुआ—'अब भी मुझे वापस दे आ, नहीं तो तेरी लड़की मर जायगी।' दृढ़निश्चयी ब्राह्मणने पहलेवाला ही जवाब दिया। कुछ दिनों पश्चात् लड़की मर गयी। फिर कहा कि 'अबकी बार स्त्री मर जायगी।' ब्राह्मणने इसका भी वही उत्तर दिया। अब स्त्री भी मर गयी। इतनेपर भी ब्राह्मण अचल-अटल रहा। लोगोंने समझा, यह पागल हो गया है। कुछ दिन बीतनेपर स्वप्नमें फिर कहा गया—'देख, अब भी मान जा, मुझे लौटा दे, नहीं तो सात दिनोंमें तेरे सिरपर बिजली गिरेगी।' ब्राह्मण बोले—'गिरने दो, मैं तुम्हें उस सागवालीकी गंदी टोकरीमें नहीं रखनेका।' ब्राह्मणने एक मोटे कपड़ेमें लपेटकर भगवान्‌को अपने माथेपर मजबूत बाँध लिया। वे सब समय यों ही उन्हें बाँधे रखते। कड़कड़ाकर बिजली कौंधती—नजदीक आती, पर लौट जाती। तीन ही दिन शेष रह गये। एक दिन ब्राह्मण गंगाजीके घाटपर संध्या-पूजा कर रहे थे कि दो सुन्दर बालक इनके पास आकर जलमें कूदे। उनमें एक

साँवला था, दूसरा गोरा। उनके शरीरपर कीचड़ लिपटा था। वे इस ढंगसे जलमें कूदे कि जल उछलकर ब्राह्मणके शरीरपर पड़ा। ब्राह्मणने कहा—'तुमलोग कौन हो भैया! कहीं इस तरह जलमें कूदा जाता है? देखो, मेरे शरीरपर जल पड़ गया, इतना ही नहीं, मेरे भगवान्पर भी छींटे पड़ गये। देखते नहीं, मैं पूजा कर रहा था।' बच्चोंने कहा—'ओहो, तुम्हारे भगवान्पर भी छींटे लग गये? हमने देखा नहीं बाबा, तुम गुस्सा न होना?' पण्डितजीने कहा—'नहीं भैया! गुस्सा कहाँ होता हूँ। बताओ तो तुम किसके लड़के हो? ऐसा सुन्दर रूप तो मैंने कभी नहीं देखा! कहाँ रहते हो भैया? आहा! कैसी अमृतघोली मीठी बोली है।' बच्चोंने कहा—'बाबा! हम तो यहीं रहते हैं।' पण्डितजी बोले—'भैया! क्या फिर भी कभी मैं तुमलोगोंको देख सकूँगा।' बच्चोंने कहा—'क्यों नहीं बाबा? पुकारते ही हम आ जायँगे।' पण्डितजीके नाम पूछनेपर—हमारा कोई एक नाम नहीं है, जिसका जो मन होता है, उसी नामसे वह हमें पुकार लेता है। साँवला लड़का इतना कहकर बोला—'यह लो मुरली, जरूरत हो तब इसे बजाना, बजाते ही हमलोग आ जायँगे। दूसरे गोरे लड़केने एक फूल देकर पण्डितजीसे कहा—'बाबा! इस फूलको अपने पास रखना, तुम्हारा मंगल होगा।' वे जबतक वहाँसे चले नहीं गये, ब्राह्मण निर्निमेष-दृष्टिसे उनकी ओर आँख लगाये रहे। मन-ही-मन सोचने लगे—'आहा! कितने सुन्दर हैं दोनों, कभी फिर भी इनके दर्शन होंगे?'

ब्राह्मणने फूल देखकर सोचा—'फूल तो बहुत बढ़िया है, कैसी मनोहर गन्ध आ रही है इसमें, पर मैं इसका क्या करूँगा और रखूँगा भी कहाँ। इससे अच्छा है, राजाको ही दे आऊँ। नयी चीज है, वह राजी होगा।' यह सोचकर पण्डितजीने जाकर फूल

राजाको दे दिया। राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे महलमें ले जाकर बड़ी रानीको दिया। इतनेमें ही छोटी रानीने आकर कहा—'मुझे भी एक ऐसा ही फूल मँगवा दो। नहीं तो मैं डूब मरूँगी।'

राजा दरबारमें आये और सिपाहियोंको उसी समय पण्डितजीको खोजने भेजा। सिपाहियोंने ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जाकर देखा—ब्राह्मण देवता सिरपर शिला बाँधे पेड़की छायामें बैठे गुनगुना रहे हैं। वे इनको राजाके पास लिवा लाये। राजाने कहा—'महाराज! वैसा ही एक फूल और चाहिये। पण्डितजी बोले—'राजन्! मेरे पास तो वह एक ही फूल था, पर देखिये, चेष्टा करता हूँ।' ब्राह्मण उन लड़कोंकी खोजमें निकल पड़े। अकस्मात् उन्हें मुरलीवाली बात याद आ गयी। उन्होंने मुरली बजायी। उसी समय गौर-श्याम जोड़ी प्रकट हो गयी। ब्राह्मण रूप-माधुरीके पानमें मतवाले हो गये। कुछ देर बाद उन्होंने कहा—'भैया! वैसा एक फूल और चाहिये। मैंने तुम्हारा दिया हुआ फूल राजाको दिया था। राजाने वैसा ही एक फूल और माँगा है। गोरे बालकने कहा—'फूल तो हमारे पास नहीं है, परंतु हम तुम्हें एक ऐसे जगह ले जायँगे, जहाँ वैसे फूलोंका बगीचा खिला है। तुम आँखें बंद करो।' ब्राह्मणने आँखें मूँद लीं। बच्चे उनका हाथ पकड़कर न मालूम किस रास्तेसे बात-की-बातमें कहाँ ले गये। एक जगह पहुँचकर ब्राह्मणने आँखें खोलीं देखकर मुग्ध हो गये। बड़ा सुन्दर स्थान है, चारों ओर सुन्दर-सुन्दर वृक्षलता आदि पुष्पोंकी मधुर गन्धसे सुशोभित हैं। बगीचेके बीचमें एक बड़ा मनोहर महल है। ब्राह्मणने देखा तो वे बालक गायब थे। वे साहस करके आगे बढ़े। महलके अंदर जाकर देखते हैं, सब ओरसे सुसज्जित बड़ा सुरम्य स्थान है। बीचमें एक दिव्य रत्नोंका सिंहासन है। सिंहासन खाली है। पण्डितजीने उस स्थानको मन्दिर समझकर प्रणाम

किया। उनके माथेमें बँधी हुई ठाकुरजीकी शिला खुलकर फर्शपर पड़ गयी। ज्यों ही पण्डितजीने उसे उठानेको हाथ बढ़ाया कि शिला फटी और उसमेंसे भगवान् लक्ष्मीनारायण प्रकट होकर शून्य सिंहासनपर विराजमान हो गये!

भगवान् नारायणने मुसकराते हुए ब्राह्मणसे कहा—'हमने तुमको कितने दुःख दिये, परंतु तुम अटल रहे। दुःख पानेपर भी तुमने हमें छोड़ा नहीं, पकड़े ही रहे। इसीसे तुम्हें हम सशरीर यहाँ ले आये हैं।'

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

'जो भक्त स्त्री, पुत्र, घर, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक सबको छोड़कर हमारी शरण आ गये हैं, भला, उन्हें हम कैसे छोड़ सकते हैं।' इधर देखो—यह खड़ी है तुम्हारी सहधर्मिणी, तुम्हारी कन्या और तुम्हारा पुत्र। ये भी मुझे प्रणाम कर रहे हैं। तुम सबको मेरी प्राप्ति हो गयी। तुम्हारी एककी दृढ़तासे सारा परिवार मुक्त हो गया।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'
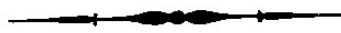
भक्त बेंकट

दक्षिणमें पुलिवेंदलाके समीप पापघ्नी नदीके किनारेपर एक छोटे-से गाँवमें बेंकट नामक एक ब्राह्मण निवास करता था। ब्राह्मण भगवान् श्रीरंगनाथजीका बड़ा भक्त था। वह दिन-रात भगवान्के पवित्र नामका जप करता। ब्राह्मणकी पत्नीका नाम था रमाया। वह भी पतिकी भाँति ही भगवान्का भजन किया करती थी। माता-पिता मर गये थे और कोई संतान थी नहीं. इसलिये घरमें ब्राह्मण, ब्राह्मणी दो ही व्यक्ति थे। दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था। वे अपने व्यवहार-बर्तावसे सदा एक-दूसरेको सुख पहुँचाते रहते थे।

पिता राजपुरोहित थे, इससे उन्हें अपने यजमानोंसे यथेष्ट धन-सम्पत्ति मिली थी। वे बहुत ही सदाचारी. विद्वान् , भगवद्भक्त और ज्ञानी थे। उन्होंने मरते समय बेंकटसे कहा था—'बेटा! मेरी पूजाके कमरेसे दक्षिणवाली कोठरीमें आँगनके बीचोबीच सात कलशे सोनेकी मोहरोंके गड़े हैं। मैंने बड़े परिश्रमसे धन कमाया है। मुझे बड़ा दुःख है कि मैं अपने जीवनमें इसका सदुपयोग नहीं कर सका। बेटा! धनकी तीन गति होती है। सबसे उत्तम गति तो वह है कि अपने ही हाथों उसे सत्कार्यके द्वारा भगवान्की सेवामें लगा दिया जाय। मध्यम गति वह है कि उसे अपने तथा अपनी संतानके शास्त्रविहित सुख भोगार्थ खर्च कर दिया जाय और तीसरी अधम गति उस धनकी होती है जो न तो भगवान्की सेवामें लगता है और न सुखोपभोगमें ही लगता है। वह गति है उसका दूसरोंके द्वारा छीन लिया जाना अथवा अपने या पराये हाथों बुरे कर्मोंमें खर्च होना। यदि भगवान्की कृपासे पुत्र सतोगुणी होता है तो मरनेके बाद धन सत्यकार्यमें लग जाता है,

नहीं तो वही धन कुपुत्रके द्वारा बुरे-से-बुरे काम—शराब, वेश्या और जूए आदिमें लगकर पीढ़ियोंतकको नरक पहुँचानेमें कारण बनता है। बेटा! तू सपूत है—इससे मुझे विश्वास है कि तू धनका दुरुपयोग नहीं करेगा। मैं चाहता हूँ—इस सारे धनको तू भगवान्‌की सेवामें लगाकर मुझे शान्ति दे। बेटा! धन तभी अच्छा है जब कि उससे भगवत्स्वरूप दुःखी प्राणियोंकी सेवा होती है। केवल इसीलिये धनवानोंको भाग्यवान् कहा जाता है। नहीं तो, धनके समान बुरी चीज नहीं है। धनमें एक नशा होता है जो मनुष्यके विवेकको हर लेता है और नाना प्रकारसे अनर्थ उत्पन्न करके उसे अपराधोंके गड़हेमें गिरा देता है। भगवान् श्रीकृष्णने भक्तराज उद्धवजीसे कहा है—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २३। १८-१९)

'चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, पाखण्ड, काम, क्रोध, गर्व, मद, ऊँच-नीचकी और अपने-परायेकी भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, होड़, लम्पटता, जूआ और शराब—इन पंद्रह अनर्थोंकी जड़ मनुष्यमें यह अर्थ (धन) ही माना गया है। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि इस 'अर्थ' नामधारी 'अनर्थ' को दूरसे ही त्याग दे।

'बेटा! मैं इस बातको जानता था, इसीसे मैंने तुझको आजतक इस धनकी बात नहीं बतायी। मैं चाहता था इसे अपने हाथसे भगवान्‌की सेवामें लगा दूँ; परंतु संयोग ऐसे बनते गये कि मेरी इच्छा पूरी न हो सकी। मनुष्यको चाहिये कि वह दान

और भजन-जैसे सत्यकार्योंको विचारके भरोसे कलपर न छोड़े। उन्हें तो तुरंत कर ही डाले। पता नहीं कल क्या होगा। इस 'कल-कल' में ही मेरा जीवन बीत गया। मेरे प्यारे बेंकट! संसारमें सभी पिता अपने पुत्रके लिये धन कमाकर छोड़ जाना चाहते हैं, परंतु मैं ऐसा नहीं चाहता। बेटा! मुझे प्रत्यक्ष दीखता है कि धनसे मनुष्यमें दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है। इससे मैं तुझे अर्थका धनी न देखकर भजनका धनी देखना चाहता हूँ। इसीलिये तुझसे यह कहता हूँ कि इस सारे धनको तू भगवान्‌की सेवामें लगा देना। तेरे निर्वाहके लिये घरमें जो कुछ पैतृक सम्पत्ति है—जमीन है, खेत है और थोड़ी-बहुत यजमानी है, वही काफी है। जीवनको सादा, संयमी और ब्राह्मणोचित त्यागसे सम्पन्न रखना, सदा सत्यका सेवन करना और करना श्रीरंगनाथ भगवान्‌का भजन। इसीसे तू कृतार्थ हो जायगा और इसीसे तू पुरखोंको तारनेवाला बनेगा। बेटा! मेरी इस अन्तिम सीखको याद रखना।

बेंकट अपने पितासे भी बढ़कर विवेकी था। उसने कहा—'पिताजी! आपकी इस सीखका एक-एक अक्षर अनमोल है। सच्चे हितैषी पिताके बिना ऐसी सीख कौन दे सकता है। मोहवश संसारके भोगोंमें फँसाकर जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले पिता-माता तो बहुत होते हैं; परंतु अज्ञानके बन्धनसे छूटनेका सरल उपाय बतलानेवाले तो आप-सरीखे पिता विरले ही होते हैं। मुझे यह धन न देकर आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। परंतु पिताजी! मालूम होता है, मेरी कमजोरी देखकर ही आपने धनकी इतनी बुराइयाँ बतलाकर धनको महत्त्व दिया है। वस्तुत: धनकी ओर भजनानन्दियोंका ध्यान ही क्यों जाना चाहिये? धनमें और धूलमें फर्क ही क्या है? जो कुछ भी हो—मैं आपकी

आज्ञाको सिर चढ़ाता हूँ और आपके संतोषके लिये धनकी ओर ध्यान देकर इसे शीघ्र ही भगवान्‌की सेवामें लगा दूँगा। अब आप इस धनका ध्यान छोड़कर भगवान् श्रीरंगनाथजीका ध्यान कीजिये और शान्तिके साथ उनके परम धाममें पधारिये। मेरी माताने मुझे जैसा आशीर्वाद दिया था, वैसे ही आप भी यह आशीर्वाद अवश्य देते जाइये कि मैं कभी भगवान्‌को भूलूँ नहीं—मेरा जीवन भगवत्परायण रहे और आपकी यह पुत्रवधू भी भगवान्‌की सेवामें ही संलग्न रहकर अपने जीवनको सफल करे।'

पिताने 'तथास्तु' कहकर भगवान्‌में ध्यान लगाया और भगवान्‌के नामकी ध्वनि करते-करते ही उनका मस्तक फट गया। बेंकट और रमायाने देखा—एक उजली-सी ज्योति मस्तकसे निकलकर आकाशमें लीन हो गयी।

बेंकटने पिताका शास्त्रमर्यादाके अनुसार संस्कार किया। फिर श्राद्धमें समुचित ब्राह्मण-भोजनादि करवाकर पिताके आज्ञानुसार स्वर्णमुहरोंके घड़ोंको निकाला और तमाम धनराशि गरीबोंकी सेवाके द्वारा भगवत्सेवामें लगा दी गयी।

तबसे बेंकट और रमायाकी निष्ठा और भी दृढ़ हो गयी। उन्होंने अपना सारा जीवन साधनामय बना डाला। पत्नी अपने पतिकी साधनामें सहायता करती और पति पत्नीकी साधनामें सहायक होता। कहीं किसी कारणसे किसी एकके अंदर कोई दोष दीखता या किसी एकके जरा भी गिरनेकी सम्भावना होती तो दूसरा उसे उचित परामर्श देकर, विनयसे समझाकर और प्रेमसे सावधान करके रोक लेता। दोनों एक ही भगवत्पथपर चलते थे और दोनोंसे ही दोनोंको बल मिलता था। यही तो सच्चा दाम्पत्य है।

एक दिन दोनों ही भगवान्‌के प्रेममें तन्मय होकर उनको

अपने सामने मानकर—अन्तरके नेत्रोंसे देखकर नाच रहे थे और मस्त होकर कीर्तन कर रहे थे। भगवान् यों तो प्रतिक्षण ही भक्तोंके समीप रहते हैं, पर आज तो वे वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये और उन्हींके साथ थिरक-थिरक नाचने लगे। भक्त भगवानपर मुग्ध थे और भगवान् भक्तोंपर। पता नहीं—यह आनन्दका नाच कितने समयतक चलता रहा। भगवान्‌की इच्छासे जब बेंकट-रमायाको बाह्य-ज्ञान हुआ तो उन्होंने देखा, दोनोंका एक-एक हाथ एक-एक हाथमें पकड़े अपने भगवान् श्रीरंगनाथ दोनोंके बीचमें खड़े मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। भगवान्‌को प्रत्यक्ष देखकर दोनों निहाल हो गये। आनन्दका पार नहीं था। उनके शरीर प्रेमावेशसे शिथिल हो गये। दोनों भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्‌ने उठाकर दोनोंके मस्तक अपनी दोनों जाँघोंपर रख लिये और उनपर वे अपने कोमल करकमल फिराने लगे। इतनेमें ही दिव्य विमान लेकर पार्षदगण पहुँच गये। भगवान् अपने उन दोनों भक्तोंसहित विमानपर सवार होकर वैकुण्ठको पधार गये। कहना नहीं होगा कि भगवान्‌के संस्पर्शसे दोनोंके शरीर पहले ही चिन्मय दिव्य हो गये थे।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'